प्रभात

इस अंक में .....

★ श्रद्धांजलि 2
★ वार्षिक रिपोर्ट 8
★ सिएटल सम्मेलन की विफलता 24
★ बुरे विषय अच्छे विषयों में बदल जाते हैं 26
★ हिन्दू पुराण-ग्रंथों का विरोध करो 35
★ महान भुमकाल 41
★ जनता से अपील 45

भारत की कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी-लेनिनवादी) (पीपुल्स वार) दण्डकारण्य स्पेशल ज़ोनल कमेटी का तिमाही मुख-पत्र

वर्ष-13 अंक-3 मई-जुलाई 2000 मूल्य-10 रुपए

कोय्यूर शहीदों की शूरतापूर्ण कुरबानी को ऊंचा उठाकर
गांव-गांव में 28 जुलाई से 3 अगस्त तक 'शहीद-सप्ताह' मनाएंगे!

कॉमरेडों और लोगों,

नक्सलबाड़ी के निर्माता, भारत की क्रान्ति के पथ-प्रदर्शक और भाकपा (मा-ले) के संस्थापक कॉमरेड चारु मजुमदार की विरासत को जारी रखते हुए, हम हर साल 28 जुलाई, जो कि कॉमरेड चारु मजुमदार का शहादत दिवस है, के मौके पर शहीदों की याद में सभाएं आयोजित करते आ रहे हैं। उत्तरी तेलंगाना, दण्डकारण्य, बिहार, आन्ध्र के अलावा कर्नाटक और तमिलनाडु में 200 से ज्यादा हमारे प्यारे कॉमरेड इस एक साल के दौरान धराशायी हो गए।

इन अमर योद्धाओं की कुरबानियों से हमारा लाल झण्डा और लाल हो गया। हमारी पार्टी की प्रतिष्ठा और कुरबानियों की परम्परा में और निखार आया। हमारी पार्टी पर और हमारी कार्यदिशा पर भारत की उत्पीड़ित जनता में विश्वास व आशाएं बढ़ीं। हमारी पार्टी द्वारा स्थापित कुरबानियों की परम्परा भारत की क्रान्ति के इतिहास में अभूतपूर्व है तथा वर्ग दुश्मनों को थरथरा देने वाली है। जैसा कि कॉमरेड चारु मजुमदार ने कहा.....

"कॉमरेडों के खून से लाल-लाल यह राह ही क्रान्ति की राह है। मानवजाति की मुक्ति की खातिर हम कोई कीमत न चुकाएं, यह भला कैसे संभव है? हम पर होने वाला हरेक हमला शोकपूर्ण ही है। इस शोक से ही दृढ़ संकल्प, जो कि ज्यादा महान कुरबानियां देने के लिए जरूरी है, दुश्मन के प्रति तीखी नफरत और क्रोध पनपते हैं.. उन हरेक की मृत्यु हिमालय सी भारी है। क्योंकि वे हमसे कहीं ज्यादा ऊंचे मानवों में बढ़ गए हैं। इसीलिए उनके खून के प्रवाहों से अनगिनत प्राणी जन्म लेते हैं। इसीलिए इस राह की धूल को हमारे आंसुओं से भिगोना चाहिए। हमारे खून से इस राह को मजबूत बनाना चाहिए।"

हमारी पार्टी की केन्द्रीय कमेटी के कॉ. श्याम, कॉ. महेश और कॉ. मुरली की 1 दिसंबर 1999 को दुश्मन की छिपी लड़ाई के चलते हुई शहादत से हमारी पार्टी को अपूरणीय क्षति हुई है। केन्द्रीय कमेटी के इन कॉमरेडों की शहादत के मद्देनजर हमारी पार्टी ने 28 जुलाई से 3 अगस्त तक `शहीद सप्ताह' मनाने का फैसला लिया।

क्रान्तिकारी इतिहास की यात्रा में, खासकर नक्सलबाड़ी के बाद के इन तीन दशकों के संघर्ष के इतिहास का हिस्सा बनकर, भारत के ठोस हालात में दीर्घकालीन जनयुद्ध के नियमों को लागू करते हुए, करीबन दो दशकों से ज्यादा वक्त हथियारबन्द संघर्ष के निर्माण में प्रत्यक्ष भाग लेने में लगाकर, जनता से लगातार जुड़े रहते हुए कॉ. श्याम, कॉ. महेश और कॉ. मुरली ने आन्दोलन को ऊंचे स्तर पर विकसित किया। उन्होंने आन्दोलन का खुद नेतृत्व करते हुए विकसित ही नहीं किया, बल्कि अपने आपको भी परिपक्व बनाया। अपनी बीसियों की उम्र से चालीस की उम्र तक भी कभी पीछे मुड़कर न देखते हुए, जिस मकसद पर उनका अटूट विश्वास था उसकी खातिर अपने प्राणों को न्यौछावर करके, निरन्तर संघर्षमय जिन्दगी में हमेशा मुस्कराते हुए , वे जहां भी हों चारों तरफ क्रान्तिकारी स्फूर्ति बिखेरते हुए आदर्शपूर्ण व्यवहार की मिसालें कायम करने वाले इन क्रान्तिकारी जन योद्धाओं की शहादत को सनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करेंगे। ❖

कॉमरेड चारु मजुमदार को लाल-लाल सलाम!

श्रद्धांजलि

दुश्मन के शिविर में मौत से जूझते हुए मौत को मात देने वाले कॉ. भूमन्ना (श्यामराव) को लाल सलाम!

दण्डकारण्य में गड़चिरोली (महाराष्ट्र) जिले के क्रान्तिकारी आन्दोलन में 1984 का कमलापुर अधिवेशन जितना महत्वपूर्ण है, कॉमरेड भूमन्ना जो इस अधिवेशन से जुड़े कई व्यक्तियों में से एक थे, की जिंदगी भी उतना ही महत्व रखती है। 16 साल बाद भी कमलापुर अधिवेशन के बारे में बात करने वाले क्रान्तिकारियों को सबसे पहले कॉमरेड भूमन्ना ही याद आते हैं। तब हमारे कॉमरेड भूमन्ना की उम्र 16 साल भी नहीं रही होगी।

कमलापुर में 'आदिवासी किसान शेत मजदूर संगठन' के पहले अधिवेशन रोककर पुलिस ने क्रान्ति को रोक सकने का सपना देखा। कमलापुर जाने वाली सभी सड़कों पर हथियारबन्द पुलिस ने पहरा बिठाया ताकि किसी भी रास्ते से क्रान्ति के प्रेमी कमलापुर नहीं पहुंच सकें। `कमलापुर के रास्ते बन्द करके क्रान्ति को नहीं रोक सकेंगे' को सच साबित करते हुए कॉमरेड भूमन्ना कमलापुर से ही नक्सलवादी राजनीति से प्रभावित हो क्रान्तिकारी बन निकले। हाथों में लाल झण्डे लेकर बड़े उत्साह से कमलापुर आने वाले हजारों किसानों को क्यों रोका गया? इस सवाल ने कॉमरेड भूमन्ना को बेचैन कर दिया। किसानों का कसूर क्या था कि पुलिस ने इतनी बर्बरता बरती? किसानों के संगठन से पुलिस को परहेज क्यों? सरकार की इजाजत से आयोजित सभा पर क्यों कर पुलिस इतनी क्रूरता से टूट पड़ी? इस तरह के कई सवालों से कॉमरेड भूमन्ना घर से बाहर आए थे। अपने साथियों को गोलबन्द किया। सरकार की घिनौनी कार्रवाई का विरोध किया। तब से लेकर भूमन्ना `संगठन वाला भूमन्ना' बन जनता के दिलों में बस गए।

कॉ. भूमन्ना का जन्म एक गरीब खेतिहर मजदूर परिवार में हुआ था। उन्होंने गांव की स्कूल में पढ़कर प्राथमिक शिक्षा हासिल की थी। उससे आगे पढ़ने को उनकी गरीबी ने इजाजत नहीं दी थी। बचपन में ही मां, भाई और अन्य परिवार सदस्यों को पालने-पोसने की जिम्मेदारी उन पर आ पड़ी थी जिससे उनके नन्हे हाथों से पट्टी-पेंसिल छूट गए। वह मजदूर बन गए। तेन्दुपत्ता, पेपर मिल के लिए बांस कटाई के अलावा गांव में उपलब्ध हरेक मजदूरी काम में कॉ. भूमन्ना जुट जाते थे। अपनी मेहनत से परिवार को पाला था। आधा पेट रह जाना, पेज-पसिया से पेट भर लेना, जंगल में कंद-मूलों और कुकुरमुत्तों को खाकर भूख मिटाना - इस तरह जिंदगी ने उन्हें गरीबी से जूझना सिखाया। जिंदगी ने ही भूमन्ना के जेहन में कई सवाल खड़े किए - जबकि हमारी मेहनत को लूटने वाले हमारे आंखों के सामने ही सुख-चैन से जी रहे हैं, तो दिन रात तनतोड़ मेहनत करने वालों का पेट क्यों नहीं भर रहा है?

इस तरह के सवालों से बेचैन युवाओं को जवाब सही समय पर मिला जबकि उस इलाके में क्रान्तिकारियों ने जन संघर्ष छेड़े। इससे उनकी भविष्य पर आशाएं फिर से जगीं। क्रान्तिकारी जन संगठनों का उन्हें सहारा मिला। जहां-जहां क्रान्तिकारी आन्दोलन पैर जमाकर जनता को संगठित करता है, देश के बाकी इलाकों के मुकाबले वहां के युवाओं को अपने भविष्य पर स्पष्ट समझ हासिल हो रही है। उस रास्ते पर चलने का फैसला लेने के बाद कॉ. भूमन्ना ने तमाम शुरूआती अड़चनों को पार किया। 1988 तक वह कुलवक्ती क्रान्तिकारी बन गए। घर पर रहते हुए अंशकालिक पार्टी सदस्य बने कॉ. भूमन्ना पेशवर क्रान्तिकारी बनकर घर से बाहर निकल पड़े।

जब गड़चिरोली डिवीजन में जन संघर्षों का पलड़ा भारी था, तब पार्टी ने आन्दोलन के विस्तार के सभी मौकों का इस्तेमाल करना चाहा। इसके तहत कॉ. भूमन्ना को आल्लापल्ली शहर के संगठक की जिम्मेदारी दी गई। आल्लापल्ली में कई सालों से जनता के नेता के रूप में सिक्का जमाकर अपना उल्लू सीधा करते रहने वाले दत्ता पांड्री जैसे आवारागर्दों, भ्रष्टाचार के खिलाफ लड़ने का बहाना करते हुए घर से बाहर नहीं निकलने वाले कलमघिस्सू शेखर, `जहां का पीवे पानी, वहीं की बोले बानी' की तर्ज पर अवसरवाद को पूजने वाले मड़ावी जोगा, पोशेट्टी गंजीवार जैसों का पर्दाफाश करते हुए कॉ.भूमन्ना ने वहां के युवाओं से और जनता से संबंध बढ़ा लिए। लेकिन टिप्रागढ़ प्रांत में छापामार दस्ते के विस्तार की जरूरत सामने आई, तो पार्टी की डिवीजनल कमेटी ने कॉमरेड भूमन्ना के सामने यह प्रस्ताव रखा। वह बिना किसी हिचकिचाहट के नव गठित टिप्रागढ़ छापमार दस्ते के सदस्य बन गए। 1989 से 1991 तक उस नए इलाके में डिप्यूटी कमांडर की जिम्मेदारी निभाते हुए कॉ. भूमन्ना ने लोगों के दिल जीत लिए। श्यामराव के नाम से वह लोगों के अच्छे साथी बन गए। वहां की जनता ने क्रान्तिकारी आन्दोलन पर काफी विश्वास रखते हुए पार्टी के द्वारा किए हर आह्वान को कामयाबी दिलाई, भले ही इसके बदले भीषण दमन को झेलना पड़ा हो। जनता ने दस्ते का बचाव आंख की पुतली के समान किया। इलाके में जन संगठन मजबूत होते गए और स्थानीय युवती-युवक दस्तों में आने

लग पड़े। दस्तों के संगठित होने के बाद बालाघाट डिवीजन गठित करने का वन कमेटी ने जो फैसला लिया, उस पर अमल करते हुए नए इलाके का सर्वे करने में कॉ. भूमन्ना ने भाग लिया। बालाघाट और गड़चिरोली डिवीजनों के बीच पुल के रूप में काम करने वाले देवरी छापामार दस्ते में कॉ. श्यामराव का तबादला करते हुए डिवीजनल कमेटी ने फैसला लिया, तो कॉ. श्यामराव ने तहेदिल से स्वीकार किया। वह देवरी छापमार दस्ते के डिप्यूटी कमांडर बन गए।

हालांकि देवरी इलाके में जन संघर्ष खड़े करने के लिए पार्टी को सीमित समय ही मिला था, लेकिन उसी का इस्तेमाल करते हुए जनता को बड़े पैमाने पर गोलबन्द करने में कॉ. श्यामराव ने अच्छा योगदान दिया। चूंकि गरीब खेतिहर मजदूर परिवार से आने वाले कॉ. श्यामराव गरीबों की मुश्किलों और उनकी मेहनत को लूटने वालों की साजिशों से अच्छी तरह वाकिफ थे, इसलिए उन्होंने जनता को मार्क्सवादी राजनीति से अच्छी तरह अवगत कराया। इस बीच पुलिसिया दमन ने लोगों पर कहर बरपा। युवतियों पर अत्याचार और युवकों की झूठी मुठभेड़ों में हत्या करना पुलिस का रोजमर्रे का काम हो गया। कॉ. श्यामराव ने न सिर्फ जनता के आंसू बांट लिए, बल्कि दुश्मन पर कड़ा प्रहार करके जनता का मनोबल ऊंचा करने के लिए मंगेझरी में किए गए घात हमले में भी भाग लिया। बारूदी सुरंगों को चिनगारी दिखाकर दुश्मन को बड़ी संख्या में हताहत करके हथियार छीन लेने में सक्रिय भाग लेकर कॉ. श्यामराव ने छापामारों की क्षमता और संकल्प शक्ति का परिचय दिया।

महाराष्ट्र की पुलिस ने 1991 से ही गड़चिरोली के आन्दोलन का उन्मूलन करने के लिए बेहद क्रूरतम दमनचक्र चलाना शुरू किया। ऐसे हालात में जनता में यह व्यापक प्रचार करते हुए कि जन संघर्ष जायज हैं और जनयुद्ध अपराजेय है, जनता का धीरज बांधा गया कि आज के इस आत्मरक्षात्मक युद्ध में छापामार कार्रवाइयों को तेज करके दुश्मन पर चोट करने की जरूरत दिनोंदिन बढ़ रही है, वरना दुश्मन हमारे आन्दोलन का नामोनिशान तक मिटा देगा। जनता के संपूर्ण सहयोग से गजमेण्डी और भीमनकोज्जी में दुश्मन पर किए गए घात हमलों में कॉ. श्यामराव ने सक्रिय रूप से भाग लिया था। पुलिस वालों को खत्म करने और उनसे हथियार छीनकर छापामार बलों को मजबूत बनाने की कई कार्रवाइयों में कॉ. श्यामराव का शूरतापूर्ण प्रदर्शन अविस्मरणीय है। इस तरह आन्दोलन में संगठनात्मक और सैन्य कर्तव्यों को सुचारू ढंग से पूरा करते हुए कॉ. श्यामराव देवरी दस्ते के कमांडर चुन लिए गए। इसके अलावा कॉ. श्यामराव पार्टी के तकनीकी कामों में भी हाथ बंटाते थे। दुश्मन की आंखों में धूल झोंकते हुए उन्होंने उसमें दक्षता हासिल की। लेकिन 1994 के फरवरी माह में विश्वासघात का शिकार होकर वह पुलिस के जाल में फंस गए थे।

कॉ. श्यामराव के खिलाफ पुलिस ने कई झूठे मामले दायर करके `टाडा' के तहत बन्दी बनाया। उन्हें जमानत से वंचित कर दिया गया। जेल जीवन उस क्रान्तिकारी के धैर्य की परीक्षा ले रहा था। बेहद अमानवीय हालात को झेलते हुए जेल में रहकर दुश्मन के खिलाफ लड़ना आसान नहीं था। जेल के आम कैदियों का पक्ष लेकर अधिकारियों के जुल्मों के खिलाफ लड़ने वाले क्रान्तिकारियों पर अधिकारी जल-भुनते थे। इसलिए अक्सर गेट पर बुलाकर लाठियों से मारपीट करना, एक जेल से दूसरी जेल तबादला करना, बर्बरता के लिए बदनाम अमरावती जेल की अंधेरी कोठरी में कैद कर देना, कायदे के अनुसार न्यूनतम सामग्री भी नहीं देना, बीमार होने पर इलाज नहीं करवाना जैसे गैर-जनवादी तरीकों में पुलिस और जेल अधिकारियों ने कॉ. भूमन्ना के साथ पाशविक बरताव किया। इन सभी को कॉ. भूमन्ना ने क्रान्तिकारी आन्दोलन की खातिर झेला। हर संभव मौके पर उन्होंने बंदियों का नेतृत्व करके संघर्ष छेड़े। जेलों में मानसिक और शारीरक रूप से असह्य हालात में रहकर भी क्रान्तिकारी आन्दोलन पर, पार्टी पर तथा जनता पर अटूट विश्वास रखने वालों को हौसला पस्त करने के लिए दुश्मन नई-नई बीमारियों का शिकार बनाने के घिनौने हथकण्डे भी अपना रहा है। कॉ. श्यामराव को खून के जरिए खतरनाक बीमारी एड्स से संक्रामित किया गया। और इसी बीमारी ने कॉ. श्यामराव की जान ली। पूर्व में देवन्ना, रैनू, बालाजी, श्यामसिंह आदि कॉमरेडों की इलाज की सुविधा से वंचित करके हत्या कर दी गई थी, तो अब कॉ. श्यामराव की एड्स जैसी घातक बीमारी से हत्या करा दी गई। ऐसे घिनौने तरीकों में क्रान्तिकारियों की हत्या करने वाले हत्यारे पुलिस को इसकी कीमत जरूर चुकानी पड़ेगी। इन कमीनों को जनता जरूर सजा देकर रहेगी। एड्स, कैंसर जैसी घातक बीमारियों से मुक्त, स्वार्थ और शोषण से मुक्त नई व्यवस्था का कॉ. श्यामराव ने जो सपना देखा, उसे हम साकार बनाने का संकल्प लेंगे। पार्टी और जनता पर गहरे विश्वास से जेल जीवन को धैर्यपूर्वक झेले कॉ. श्यामराव की मृत्यु हमारी पार्टी के 31वें जन्मदिन, 22 अप्रैल, 2000 को हुई। उनकी शहादत से हमारा लाल झण्डा और लाल हो गया। कॉ. भूमन्ना (श्यामराव) अमर रहें। ❖

(...पृष्ठ 4 का शेष)

बचपन से ही क्रान्तिकारियों के संपर्क में रहकर, अपने गांव की क्रान्तिकारी परंपरा को जारी रखते हुए दस्ते में भर्ती होने वाली कॉ. सुजाता ने 10 जून 2000 को तोहेगांव के जंगल में कमेण्डो जवानों के साथ हुई मुठभेड़ में कॉ. अखिला के साथ शहीद हो गई। भारत की नव जनवादी क्रान्ति के लिए कम उम्र में ही सर्वोच्च बलिदान देने वाली इन दोनों नौजवान क्रान्तिकारियों को `दण्डकारण्य स्पेशल ज़ोनल कमेटी' विनम्रता से श्रद्धांजलि पेश कर रही है। ❖

कॉ. अखिला की कुरबानी को लाल सलाम!

गड़चिरोली डिवीजन के तोहेगांव के जंगल में 10 जून, 2000 को दुश्मन के साथ हुई आमने-सामने की मुठभेड़ में दो योद्धाएं धराशायी हो गईं। भीषण गोलीबारी के बीच हिम्मत न हारते हुए आखिरी दम तक शूरतापूर्ण लड़ाई लड़कर धराशायी हुई उन नौजवान वीरांगनाओं में एक अखिला थी। मात्र 17 साल की छापामार कॉ. अखिला उत्साह का पर्याय हुआ करती थीं। वह चेतना की मूर्ति थीं।

अहेरी तहसील का गांव मांड्रा ऐसा गांव है जिसने कई क्रान्तिकारियों को जन्म दिया। जबसे कमलापुर रेन्ज में क्रान्तिकारी गतिविधियां शुरू हुईं, तभी से संघर्ष में आगे रहने वाले गांवों में मांड्रा एक है। जंगल विभाग, तेन्दुपत्ता ठेकेदारों और पेपरमिल के मालिकों के खिलाफ किए संघर्षों में मांड्रा की जनता हमेशा आगे रहती थी। कॉ. अखिला दसरू नेताम और कांतक्का की लाड़ली थी। कॉ. अखिला के पिता दसरू नेताम डीएकेएमएस के रेन्ज कमेटी नेता रह चुके थे। जब-जब छापामार दस्ते का मांड्रा में जाना होता था, वह अपनी बेटी को साथ में लेकर आया करते थे। घर में उसका नाम सुरेखा था।

अपने पिता की उंगली पकड़कर क्रान्तिकारियों से मिलने के लिए आने वाली वह नन्ही लड़की गानों की दीवानी थी। जब तक दस्ता वहां से चला नहीं जाता वह उसके ही साथ रहती थी। इस सिलसिले में वह क्रान्तिकारी बाल संगठन की सदस्या बन गई। तीसरी कक्षा तक पढ़कर कॉ. सुरेखा ने क्रान्तिकारी गाने सीखे। बाल संगठन में बच्चों को नेतृत्व प्रदान करते हुए वह संगठन की अध्यक्षा बनी थी। बढ़ती उम्र के साथ-साथ उसमें छापामार बनने की इच्छा भी बढ़ती गई। अपने इस विचार को उसने दस्ते के सामने रखा, तो छापामार बनने के लिए आवश्यक उम्र न होने के कारण उसे इंतजार करना पड़ा। तब तक वह क्रान्तिकारी आदिवासी महिला संगठन में काम करती रहीं। शराब के खिलाफ तथा घर में महिलाओं के साथ दुरव्यवहार के खिलाफ कॉ. अखिला ने संघर्ष किया।

आखिर उसकी तमन्ना फरवरी 1999 में पूरी हुई। वह अहेरी छापामार दस्ते की सदस्या बन गईं। वह दस्ते के सभी स्त्री-पुरुष साथियों से हिल-मिलकर काम करने लग गईं। पार्टी के आदेश पर, पार्टी की जरूरतों को चेतनापूर्वक पहली प्राथमिकता देते हुए वह चामोर्षी छापामार दस्ते में शामिल हो गईं। जब दुश्मन ने चामोर्षी दस्ते का सफाया करने के लिए खूनी दमन अभियान छेड़ रखा है, बिना किसी हिचकिचाहट के उन्होंने उस इलाके में कदम रखा। उन्होंने शपथ ली कि चाहे कितना भी दमन आए, या जान भी देनी पड़े, पर दस्ता नहीं छोड़ेगी। अपनी शपथ पर कायम रहकर कॉ. अखिला ने हमारे सामने बहुत बड़ा आदर्श पेश कर दिया।

अपनी राष्ट्रीयता की मुक्ति की खातिर, सिंहली अंध राष्ट्रवादी सेना के खिलाफ बहादुरी से लड़कर जान कुरबान कर देने वाली तमिल योद्धा अखिला के सम्मान में सुरेखा को उनके साथियों ने `कॉमरेड अखिला' का नाम रखा था। कॉ. अखिला ने संघर्ष और कुरबानी की विरासत जारी रखकर अपने नाम को सार्थक बनाया। कॉ. अखिला एक मामूली और मिट्टी से पैदा हुई युवती थीं, पर उन्होंने जिस तरह अनुपम शूरता का परिचय देते हुए जान की कुरबानी दी, दण्डकारण्य का क्रान्तिकारी आन्दोलन, विशेषकर गड़चिरोली क्रान्तिकारी आन्दोलन उसे हमेशा याद करेगा। ❖

करंचा की ज्वाला कॉमरेड सुजाता !

करंचा एक छोटा सा गांव है जो गड़चिरोली डिवीजन की अहेरी तहसील के जिम्मलघट्टा रेन्ज में स्थित है। इस गांव से गड़चिरोली के कमेण्डो जल-भुनते हैं। इस गांव ने क्रान्तिकारी आन्दोलन में अपने 5 प्यारे बेटों और बेटियों को समर्पित किया। इन पांचों में से एक थीं कॉमरेड लक्ष्मी कुडिमेत। पिता गंगन्ना और मां बुच्चक्का की इकलौती बेटी और चार भाइयों की लाड़ली बहन थी वह। लक्ष्मी का जन्म पीपुल्स वार पार्टी के दण्डकारण्य में कदम रखने के बाद, 1983 में हुआ था, यह संयोग ही था कि करंचा गांव में संगठन का निर्माण भी तभी हुआ था। वह आन्दोलन की गोद में पली-बढ़ी और क्रान्ति के गीत ही उसके लिए लोरियां थे। उसने दस साल की मासूम उम्र में ही दस्ते में भर्ती होने की इच्छा जाहिर की थी। लेकिन पर्याप्त उम्र नहीं होने के कारण उसके प्रस्ताव को पार्टी टालती आ रही थी।

लक्ष्मी निहायत गरीब परिवार की बेटी थी। पार्टी के आने के बाद ही उनके परिवार को जोतने के लिए जमीन मिली थी। पांच संतानों में से वह दूसरी थी, और वह खेती के कामों में मां-बाप का हाथ बंटाती थी। पेपर मिल, जंगल विभाग के कामों में काम करने जाती थी। तेन्दुपत्ता सीजन में पत्ता तोड़ने जाती थी। इस तरह, घर में काम करते हुए ही वह क्रान्तिकारी आदिवासी महिला संगठन की सदस्या बन गई। पेपर मिल और तेन्दुपत्ता की मजदूरी में बढ़ोत्तरी के लिए किए गए संघर्षों में उसने सक्रिय भाग लिया था। वर्ष 2000 के अप्रैल माह में वह दस्ते में भर्ती होकर छापमार बनी थी। जब उससे पार्टी ने चामोर्षी दस्ते में जाने को कहा, तो वह बिना किसी हिचकिचाहट के निकल पड़ी। *(शेष पृष्ठ 3 पर ...)*

सांप काटने से जान गंवा चुकी परालकोट छापामार दस्ता सदस्या

कॉमरेड राजे (मेस्सी कोरसा) को लाल सलाम!

19 जुलाई की मध्यरात्रि के 12 बजे, जब परालकोट छापमार दस्ता अपना दैनिक क्रान्तिकारी कार्यक्रम पूरा करके जंगल मां की गोद में आराम कर रहा था, दस्ता सदस्या कॉ. राजे अचानक जहरीले सर्पदंश के चपेट में आ गईं। साथी छापमारों ने अपने पास मौजूद दवाइयों से कॉमरेड राजे को बचाने की पूरी कोशिश की, परन्तु उस युवा क्रान्तिकारी को वे बचा नहीं सके। उसी रात के 3 बजे (20 जुलाई, 2000) को कॉमरेड राजे ने आखिरी सांसें लीं। छापामार साथियों ने उमड़ते आंसुओं को दबाकर कॉमरेड राजे की लाश को लाल झण्डे से ढांककर जनता से मिलकर क्रान्तिकारी परम्पराओं से पूरे सम्मान के साथ उनके अंतिम संस्कार किए। क्रान्तिकारी जनता और छापामार योद्धाओं ने कॉमरेड राजे के सपनों को साकार बनाने और पितृसत्ता को जिससे उन्होंने नफ़रत की तथा सामंतवाद व साम्राज्यवाद को, जो उसकी जड़ हैं, दफ़न करने की शपथ ली।

सत्रह साल की उम्र भी पार नहीं करने वाली कॉमरेड राजे का जन्म ग्राम काकूर में हुआ था जो बाहरी दुनिया के द्वारा 'अबूझमाड़' के नाम से बुलाए जाने वाले माड़ अंचल के पहाड़ों में स्थित अनेक क्रान्तिकारी गांवों में से एक है। वह श्री बोडुंगा कोरसे और श्रीमती तोंदे की दूसरी संतान थीं। गरीब आदिवासी परिवार में जन्मी कॉमरेड राजे का नाम उनके माता-पिता ने मेस्सी रखा था। दस्ते में भर्ती होकर दस महीने भी पूरे नहीं हुए कि उन्होंने क्रान्ति के मकसद की खातिर अपने अनमोल प्राण न्यौछावर किए। परन्तु कॉमरेड राजे की जिन्दगी तभी से क्रान्तिकारियों और पीपुल्सवार पार्टी से जुड़ गई थी जबसे उन्होंने बोलना-चलना सीखा। हालांकि माड़ के सभी गांवों की तरह काकूर भी एक छोटा-सा गांव है, लेकिन वह ऐसे गांवों में से एक है जिन्होंने एक दशक पहले से ही क्रान्तिकारी राजनीति से जागृत होते हुए लुटेरे 'राज्य' के खिलाफ बगावत का परचम फहराया। काकूर गांव परालकोट से थोड़ी ही दूरी पर है जहां पर 1825 में ब्रितानी साम्राज्यवाद के खिलाफ बगावत का ऐलान करने वाले सबसे पहले योद्धा गेंदसिंह आंग्ल-मराठा सेनाओं से लड़कर फांसी के फंदे पर मुस्कराते हुए झूले थे। इस इलाके के कई गांवों की तरह, काकूर को भी विद्रोह की परम्परा विरासत में मिली है। यहां के बुजुर्ग अभी भी आंखों देखा हुआ हाल सुनाते हैं कि उपनिवेशी शासकों से सांठगांठ करने वाले राजा और जमींदार किस तरह उनसे बेगारी करवाया करते थे और किस तरह उन पर जुल्म एवं अत्याचार किया करते थे। मौजूदा अर्ध-उपनिवेशी और अर्ध-सामंती समाज को ध्वस्त करके नव जनवादी भारत के निर्माण के लिए प्रयासरत भाकपा (मा-ले) (पीपुल्स वार) की राजनीति से सहज ही काकूर के आबाल-वृद्ध आकर्षित हुए। पार्टी और पार्टी की राजनीति से उन्होंने स्नेह किया और विश्वास रखा। पिछले दो दशकों से बिना रुके आगे बढ़ रहे दण्डकारण्य के क्रान्तिकारी आन्दोलन में भागीदार बनने वाली ताकतों में आज दूसरी पीढ़ी के लोगों का आगे आना आम हो गया। काकूर में भी वही हुआ - वही हो रहा है। कई युवती-युवक क्रान्तिकारी पार्टी में और क्रान्तिकारी बलों में शामिल होकर आन्दोलन की शान बढ़ा रहे हैं। कॉमरेड राजे उस पीढ़ी की, खासकर काकूर गांव के युवा वर्ग की प्रतिनिधि थीं। वह माड़ क्षेत्र से पहले शहीद कॉमरेड गुडसा की कुरबानी की परम्परा को जारी रखते हुए पहली महिला शहीद बनीं।

कॉमरेड राजे ने बचपन से ही दस्तों को देखा। दस्तों के भाइयों और बहनों से दोस्ती की। दस्ते के लिए भोजन-पानी लाने से लेकर, पहले बाल संगठन में और बाद में क्रान्तिकारी आदिवासी महिला संगठन (केएएमएस) में सदस्या बनकर उन्होंने अपनी राजनीतिक चेतना बढ़ाई। विशेषकर माड़ अंचल के आदिवासी समाज में रीति-रिवाजों की आड़ में महिलाओं पर होने वाले पितृसत्तात्मक उत्पीड़नों को उन्होंने क्रान्तिकारी राजनीति की रोशनी में समझ लिया। उन सभी का अन्त करने के लिए उन्होंने हथियारबन्द होकर लड़ने का निश्चय किया। स्थानीय पार्टी इकाई के सामने अपना प्रस्ताव रखा। लेकिन, चूंकि छापामार दस्ते की भर्ती के नियमों के मुताबिक उनकी उम्र 16 साल की नहीं हुई थी, इसलिए उनके प्रस्ताव को एक साल तक टालना पड़ा ताकि वह क्रान्तिकारी राजनीति और क्रान्तिकारी जिन्दगी में पेश आने वाली मुश्किलों तथा समस्याओं से और भी ज्यादा अवगत हो सकें। लेकिन इस तरह टालना और उन्हें मनाना स्थानीय पार्टी इकाई के लिए आसान काम नहीं था। आखिरकार पिछले साल के नवंबर माह में उसके इंतज़ार की घड़ियां खत्म हुई थीं। वह 'कॉमरेड राजे' बनकर परालकोट छापामार दस्ते में भर्ती हो गईं।

हालांकि कॉमरेड राजे ने छापामार के तौर पर चंद महीनों तक ही जिया, लेकिन वह एक चेतना की मूर्ति थीं। छापामार दस्ता सदस्या के तौर पर अनुशासन का पालन करते हुए वह पढ़ाई भी सीखीं जिससे वह घर में रहते हुए वंचित रही थीं। जनता से एकताबद्ध होते हुए, उनका दुख-सुख बांटते हुए उन्होंने लोगों को क्रान्तिकारी राजनीति समझाई जितनी वह जानती थीं। इस इलाके में आदिवासी संस्कृति को निगलते हुए तेजी से पनप रही हिन्दू

सामंती संस्कृति और साम्राज्यवादी संस्कृति का विरोध करके वैकल्पिक जन संस्कृति को विकसित करने के लिए जारी प्रयासों में कॉमरेड राजे का योगदान रहा। आखिर तक एक मजबूत छापामार के तौर पर डटे रहने वाली कॉमरेड राजे ने तब भी जब जहरीले सांप के डसने के बाद सांस लेना भी मुश्किल हुआ था, और जब मौत आकर उनके सामने खड़ी हुई थी, असाधारण शांत स्वभाव का प्रदर्शन करके अंतिम विदाई ली। उनके दस्ते में भर्ती होने के कुछ ही दिनों बाद माड़ डिवीजन में पुलिस ने बड़े पैमाने पर खोजबीन अभियान छेड़कर भालेवाड़ा गांव में दस्ते पर गोलीबारी की थी और कोहकामेट्टा के बेकसूर किसान राजू नरोटी की गोली मारकर हत्या कर दी थी। इसके बावजूद कॉमरेड राजे टस से मस नहीं हुई थीं। उनके दस्ते में शामिल होने के कुछ ही माह पहले कोटेनार गांव में पुलिस के द्वारा किए गए हमले में दस्ता कमांडर कॉमरेड सोमन्ना सहित कॉ. सबिता, कॉ कविता और कॉ गुडसा के शहीद होने के बावजूद वह दस्ते में भर्ती होने के अपने फैसले पर अड़िग रहीं। बेकसूर किसानों को भी नहीं बख्शते हुए लोगों की जान एवं इज्जत से खिलवाड़ करने वाले पुलिसिया हत्यारों का प्रतिरोध करने एवं जनता को इसके लिए तैयार करने के पार्टी द्वारा लिए गए फैसलों और उन पर किए गए अमल में कॉ. राजे ने अपनी भूमिका निभाई। राजनीतिक और संगठनात्मक तौर पर अनुभव हासिल करने के दौरान ही इस तरह अचानक कॉ. राजे का निधन होना नव गठित माड़ डिवीजन के क्रान्तिकारी आन्दोलन के लिए, विशेषकर क्रान्तिकारी महिला आन्दोलन के लिए बड़ा नुकसान है। इसके बावजूद कॉ. राजे के अधूरे मकसद को पूरा करने के लिए अनगिनत युवती-युवक क्रान्तिकारी आन्दोलन में शामिल होकर क्रान्ति को सफल बनाएंगे। इतिहास में अब तक यही साबित होता आया है।

दण्डकारण्य में मुट्ठी भर लोगों से शुरू हुआ यह आन्दोलन इन दो दशकों के दौरान सैकड़ों छापामारों, हजारों जन संगठन कार्यकर्ताओं और कई अन्य हमदर्दों से युक्त एक जबर्दस्त जन आन्दोलन और प्राथमिक स्तर के छापामार इलाके के रूप में उभरकर, अब तमाम देशवासियों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर रहा है। हालांकि इन बीस सालों में कई छापामार सर्पदंश का शिकार हुए हैं, परन्तु इस तरह किसी छापामार के मृत्यु हो जाने की यह पहली घटना है। हमारा हथियारबन्द प्रतिरोध आन्दोलन इस कड़वे अनुभव से सबक सीख लेगा और आवश्यक हर कदम उठाने में सतर्कता बरतेगा ताकि ऐसे हादसों से किसी दूसरे छापामार की मृत्यु न हो। फिर भी लुटेरे शासक वर्गों के खिलाफ जान की बाजी लगाकर संघर्ष को जारी रखे हुए छापामार योद्धाओं को इस तरह के हादसों से भी जूझना ही पड़ेगा। जैसा कि फिलिप्पीनी कम्यूनिस्ट पार्टी के निर्माता **कॉ. जोस मारिया सिजॉन** ने कहा ***"... मरने का ढंग नहीं, बल्कि युद्धों से हासिल निचोड़ एक इंसान को योद्धा बना देता है। बीमारी से मरने वाला योद्धा है। अवांछित हादसे में शहीद होने वाला योद्धा है। दुश्मन की गिरफ्त में यातनाएं झेलकर मरने वाला योद्धा है। सवाल यह नहीं कि कैसे मरा, बल्कि किसके लिए मरा - यही शहादत का फैसला करता है"*** ❖

तमिलनाडु में 'मुठभेड़' हत्याएं दोबारा शुरू

तमिलनाडु क्रान्तिकारी आन्दोलन की राह को रोशन करने वाले नेता

कॉ. रवीन्द्रन को लाल-लाल सलाम!

10 जनवरी, 2000 को तमिलनाडु के स्पेशल टास्क फोर्स और क्यू ब्रान्च (खुफिया विभाग) ने धर्मपुरी जिले की पेन्नगरम तहसील के पेरुंगाडु गांव में हमारी पार्टी की तमिलनाडु इकाई के नेता कॉ. रवीन्द्रन और उनके एक साथी कॉ. शिवा को गिरफ्तार किया। उसके बाद उन्हें क्रूरतम यातनाएं देकर, कॉ. शिवा के सामने ही कॉ. रवीन्द्रन की आंखों पर पट्टी बांधकर गोली मारकर हत्या कर दी।

इस घटना के साथ ही तमिलनाडु की पुलिस ने करीब डेढ़ दशक के विराम के बाद दोबारा झूठी मुठभेड़ हत्याओं की शुरूआत की। झूठी मुठभेड़ हत्याएं करने में तमिलनाडु की पुलिस का बहुत पुराना इतिहास रहा। 1940 के दशक के आखिर में तत्कालीन अविभाजित कम्युनिस्ट पार्टी के नेता कॉमरेड इरनियन की तंजावूर में गोली मारकर हत्या कर दी गई थी। 1970 के दशक में, यानी नक्सलबाड़ी के संघर्ष के भड़कने के बाद, हमारी पार्टी के तमिलनाडु राज्य सचिव और केन्द्रीय कमेटी सदस्य कॉमरेड अप्पु को पुलिस ने `लापता' कर दिया था। आपातकाल के अंधेरे दिनों में कॉमरेड श्रीलन की अमानवीय यातनाएं देकर हत्या कर दी गई थी।

फिर 1980 के दशक में, जब भाकपा (मा-ले) (पीपुल्स वार) की अगुवाई में जन आंदोलन दोबारा खड़ा होने लगा था, इन पुलिसिया दरिंदों ने हमारे 26 प्यारे कॉमरेडों की जानें लीं। मानव रूपी दरिंदा वाल्टर देवरम (जो हाल ही में डी.आई.जी. पद से सेवानिवृत्त हुआ था) ने खुद अपने हाथों से कॉ. बालन और कॉ. कन्नामणि की क्रूरतम यातनाएं देने के बाद गोली मारकर हत्या कर दी थी।

लेकिन चाहे कितने धक्के लगने के बावजूद, तमिलनाडु में क्रान्तिकारी आन्दोलन के शोले कभी नहीं बुझे। दमन के हरेक दौर के बाद वह दोबारा सांसें भरकर दुगुनी ताकत से आगे बढ़ता आ

रहा है। 1980 के दशक में हमारी पार्टी के नेतृत्व में चलने वाला क्रान्तिकारी आन्दोलन धर्मपुरी जिले के कई इलाकों के अलावा, तमिलनाडु के कई अन्य हिस्सों में भी फैल गया। लेकिन, इस दौरान परिसमापक कोदण्डरामन गिरोह ने पुलिस को जितनी क्षति पहुंचाई, उससे कहीं ज्यादा क्षति क्रान्तिकारी आन्दोलन को पहुंचाई।

1992 से क्रान्तिकारी आन्दोलन को दोबारा पटरियों पर लाने की कोशिशें चल रही हैं। पिछले कुछ सालों में जन संगठनों का दोबारा निर्माण किया गया। और संघर्ष फिर से गति पकड़ने लग गए। अकेले धर्मपुरी और पेन्नगरम तहसीलों में जन संगठनों की करीब 100 शाखाएं काम करने लग गईं। सूदखोरों, जंगलात अधिकारियों, जमींदारों और बदमाश मुखियाओं के खिलाफ बड़े पैमाने पर संघर्ष छेड़े गए। महिलाओं के उत्पीड़न और भेदभाव एवं जाति-उत्पीड़नों के खिलाफ आन्दोलन चलाए गए। 1993-94 में पुलिस इस आन्दोलन पर बड़े पैमाने पर टूट पड़ी तथा 150 से ज्यादा लोगों की धरपकड़ की। यह दमनकाण्ड अब भी जारी है। पेन्नगरम के जंगल इलाके में क्रान्तिकारी आन्दोलन के विस्तार से आतंकित शासकों ने अब तक वीरप्पन की खोज में रहे एसटीएफ दस्तों को अब क्रान्तिकारियों के खिलाफ तैनात किया। स्थानीय गुण्डों को हथियार देकर क्रान्तिकारियों के खिलाफ उकसाया। एक बार उन गुण्डों द्वारा की गई हत्या की कोशिश से कॉ. रवीन्द्रन बाल-बाल बचे थे।

दमन का नया दौर

हमारे प्यारे नेता कॉ. श्याम, कॉ. महेश और कॉ. मुरली की `राज्य' द्वारा पाशविकता से हत्या की जाने के बाद धर्मपुरी में जनता ने 26 दिसंबर को दो बसें जला दीं। और इसके साथ ही पुलिस को दमनचक्र चलाने के लिए एक बहाना मिल गया। हमारी पार्टी के खिलाफ अखबारों में दहशत फैलाने वाली कहानियां गढ़ दीं। एसटीएफ के बलों के अलावा 3.000 अतिरिक्त सशस्त्र पुलिस जवानों को तैनात करके ग्रामीण इलाकों में खोजबीन कार्रवाई चलाने के लिए विशेष दस्ते बनाए गए। पुलिस थानों को मजबूती से निर्मित किया गया। बस अड्डों और मुख्य चौराहों पर पुलिस के दस्तों को नियुक्त किया गया। अंततः वे कॉ. रवीन्द्रन को गिरफ्तार करके उनकी हत्या करने में कामयाब हो सके।

कॉ. रवीन्द्रन - एक फौलादी इरादों वाले क्रान्तिकारी योद्धा जिन्होंने कभी पीछे मुड़कर नहीं देखा

कॉ. रवीन्द्रन का जन्म एक उच्च मध्यम वर्गीय परिवार में हुआ था। सिविल इंजिनीयरी में डिप्लोमा लेकर वह भारत सरकार के दूरसंचार विभाग के कर्मचारी बने थे। भारत के दूरसंचार विभाग के कर्मचारियों और मजदूरों का दशकों पुराना क्रान्तिकारी संघर्षों का इतिहास रहा है और मजबूत मजदूर संघ भी हैं। इस विभाग में भर्ती होने के बाद कॉ. रवीन्द्रन ने मजदूर संघ की गतिविधियों में सक्रियता से भाग लेते हुए ही कर्मचारियों और मजदूरों के दिल जीत लिए। मजदूरों की समस्याओं पर जब-तब संघर्ष छेड़ते हुए, उन्हें प्रमुख संघों के तहत गोलबंद करने का प्रयास किया।

उन्होंने 1989 में कुलवक्ती कार्यकर्ता के तौर पर आन्दोलन को चलाने की जिम्मेदारी उठाई। तब तक वह अपनी नौकरी से मिलने वाले वेतन का अधिकांश हिस्सा क्रान्तिकारी छात्र-नौजवानों की पत्रिका `मुन्नोडी' के प्रकाशन में खर्च किया करते थे। मण्डल सिफारिशों के अमल के लिए चलाए गए आन्दोलन, इराक पर अमरीकी साम्राज्यवादियों के हमले के खिलाफ किए गए प्रदर्शनों - इस तरह कई आन्दोलनों एवं विरोध प्रदर्शनों में कॉ. रवीन्द्रन का योगदान रहा।

1993 में उन्हें गिरफ्तार करके जेल में डाला गया था, तो उन्होंने जेल के दूसरे कैदियों के साथ अधिकारियों के अमानवीय बरताव के खिलाफ संघर्ष छेड़े। पुलिस की हिरासत में यातनाओं के कारण एक बच्चे की मौत होने की घटना पर उन्होंने दृढ़तापूर्वक संघर्ष चलाया, जिसके परिणामस्वरूप सरकार को इस हत्या के लिए जिम्मेदार दरोगा को गिरफ्तार करने पर मजबूर होना पड़ा था। इस तरह, कॉ. रवीन्द्रन चाहे जेल में रहें या बाहर, नाइंसाफी के लिए जिम्मेदार लोगों से हमेशा जूझते रहे।

उच्च मध्यम वर्ग से आकर, उन्होंने जिस तरह अपने को एक सर्वहारा योद्धा के रूप में ढाला, यह हर क्रान्तिकारी के लिए अनुकरणीय आदर्श है। सादगी भरा जीवन और मेहनती स्वभाव के लिए वह जाने जाते थे। जिम्मेदारी उठाने के लिए हमेशा तैयार रहना, काम में पहलकदमी, संगठनात्मक अनुशासन का हमेशा पालन करना जैसे अच्छे कम्युनिस्ट के गुण उनके अंदर कूट-कूटकर भरे हुए थे। जनता से घुलमिल जाना उनकी और एक खूबी थी। जब दुश्मन की गोलियों को अपना सीना अड़ाया, तब भी मुस्कुराते हुए, आखिरी दम तक भाकपा (मा-ले) (पीपुल्स वार) के लाल झण्डे की प्रतिष्ठा बनाए रखने वाले कॉ. रवीन्द्रन की याद में `प्रभात' लाल-लाल श्रद्धांजली पेश करती है। ❖

जनता के हित के लिए जान देना हिमालय पर्वत से भी ज्यादा भारी अहमियत रखता है, जबकि फासिस्टों के लिए काम करना तथा शोषकों व उत्पीड़कों के लिए जान देना पंख से भी ज्यादा हल्की अहमियत रखता है!

"पुलिसिया दमन हमारे जन-संघर्ष को नहीं रोक सकता"

- दण्डकारण्य स्पेशल गुरिल्ला ज़ोन

(जून, 1999 से मई 2000 तक दण्डकारण्य के विभिन्न डिवीजनों की क्रान्तिकारी जनता द्वारा दुश्मन के दमनचक्र का मुकाबला करते हुए किए संघर्षों का यह ब्यौरा हमें पार्टी के एक स्पेशल ज़ोनल कमेटी सदस्य ने दिया, जिसे हम वार्षिक रिपोर्ट के रूप में पेश कर रहे हैं।
- सम्पादक मण्डल)

कोय्यूर शहीदों की कुरबानी की प्रेरणा से हथियार उठाए छापामार

जनता द्वारा शहीद सभाओं में मुट्ठी भींचकर शपथ

2 दिसम्बर, 1999 भारत के जनवादी क्रान्तिकारी आन्दोलन के इतिहास में सबसे बुरा दिन था। भाकपा (मा-ले) (पीपुल्स वार) के इतिहास में उस दिन एक साथ तीन केन्द्रीय कमेटी नेताओं को गंवाना पड़ा। उस दिन पीपुल्स वार पार्टी के नेतृत्व में दिनोंदिन विस्तारित होते हुए मजबूत हो रहे क्रान्तिकारी आन्दोलन ने सर्वहारा के अपने सर्वोच्च सपूत गंवा दिए। मृत्यु से जूझते हुए उस दिन उन तीनों योद्धाओं ने अपनी गर्जना से क्रान्ति के जो संदेश फैलाए, वे राजसत्ता को छीन लेने के लक्ष्य से दुश्मन को चुनौती देते हुए विशेष छापामार इलाकों में विकसित हुए दण्डकारण्य और उत्तर तेलंगाना में तथा छापामार इलाकों की तैयारियां कर रहे आन्ध्र और बिहार के अलावा समूचे भारत में फैल गए। दुश्मन द्वारा अपनाई गई अत्यंत निकम्मी छिपी लड़ाई की रणनीति के वे तीनों योद्धा शहीद हुए थे। उन्हें बंगलूर शहर में गिरफ्तार करके दुश्मन ने बेहद अमानवीय यातनाएं दीं। उन्होंने दुश्मन की बर्बरता का दृढ़ता से सामना किया, इस अटल विश्वास के साथ कि उनके उद्देश्य सर्वोन्नत हैं और उनके अधूरे सपनों को उनके अनगिनत वारिस और साथी पूरा करेंगे। दुश्मन की गोलियों को अपने सीना अड़ाकर उन्होंने लाल झण्डे की लालिमा बढ़ा दी। उत्तर तेलंगाना के करीमनगर जिले के कोय्यूर जंगल इलाके में दुश्मन की झूठी मुठभेड़ में उनकी देहों से लुढ़के खून के कतरे इस धरती मां की मुक्ति की खातिर बोए गए बीज हैं।

यह खबर जंगल की आग की तरह फैल गई। अपने प्यारे और आदरणीय नेताओं की हत्या करने वाले दुश्मन के खिलाफ छापामार योद्धाओं और क्रान्तिकारी जनता में क्रोधाग्नि भड़क उठी। दण्डकारण्य भर में इन शहीदों की याद में आयोजित सभाओं में क्रान्ति का संकल्प लिया गया। स्मृति-सभाओं में शहीदों को याद करते हुए वक्ताओं ने बताया कि योद्धा की मौत से आंसू नहीं निकलते, बल्कि कर्तव्य को पूरा करने का संकल्प बढ़ेगा। तथा दुश्मन के खिलाफ लोगों में नफरत बढ़ती है।

छापामारों की वर्ग-घृणा से लिखीराम कावरे का अंत

दण्डकारण्य के बालाघाट-भण्डारा संयुक्त डिवीजन के छापामारों को अपने प्यारे नेताओं की शहादत की खबर रेडियो से सुनकर सहसा यकीन नहीं हुआ। लेकिन, दिनोंदिन संघर्ष को कुचलने के लिए किए जा रहे घिनौने प्रयासों को देखते हुए ऐसा खतरा तो है, इस विचार से उन्होंने अपना ढाढ़स बांधा। चूंकि ये हत्याएं खासकर पिछले एक दशक से आन्ध्र, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, उड़ीसा और बिहार की सरकारों के केन्द्र सरकार से सांठगांठ करके किए षड़यंत्रों का नतीजा ही हैं, इसलिए उन षड़यंत्रकारियों पर हमला करके इन हत्याओं का बदला लेने का फैसला लिया गया। दण्डकारण्य में बढ़ रहे उत्पीड़ित किसान जनता के संघर्षों को कुचलने के लिए तीनों राज्यों की सरकारें अपने पड़ोसी राज्यों के पुलिस और प्रशासन के आला अफसरों के साथ लगातार बैठकें करके सुनियोजित हमले छेड़ रही हैं। इन राज्यों के मंत्रीमण्डल इन योजनाओं पर मजबूती से अमल कर रहे हैं और उन्हें जनयुद्ध को तेज करके मात देने की जरूरत है। इस समझ से छापामारों ने मध्यप्रदेश के परिवहन मंत्री लिखीराम कावरे के किरनापुर में रुकने की खबर जनता से सुनकर, उस पर हमला करने का निश्चय किया। इस हमले से उन्होंने शासक वर्गों को क्रान्तिकारियों के बदले के शोलों का मजा चखाया। लिखीराम को छापामारों ने क्रान्तिकारी आन्दोलन को कुचलने के लिए उसकी साजिशों के बदले में मौत की सज़ा दी। क्रान्तिकारियों ने इस कार्रवाई के बाद क्रान्तिकारी नारों से किरनापुर के लोगों को जगा दिया। गांवों और जंगलों ने इन नारों को सुन योद्धाओं की याद में नम्रता से सिर झुकाकर खामोशी मनाई। छापामारों ने यह चेतावनी दी कि जन योद्धाओं की हत्या करने वाले कमीनों को इतिहास माफ नहीं करेगा। आन्ध्र के तानाशाह चंद्रबाबू और डीजीपी दोरा का भी हश्र होगा।

मंत्री की मौत से बौखलाए शासक वर्गों ने जनयुद्ध के नतीजे में होने वाली मौत से बचने के लिए विधानसभा और लोकसभा में काले कानूनों की रूपरेखा तैयार की। लेकिन विधेयकों और कानूनों से उमड़ते जन संघर्षों को कुचलना असंभव है, इस सच्चाई को साबित करते हुए छापामारों ने वाकुलवाही में जबर्दस्त घात हमला किया।

20 फरवरी को वाकुलवाही में कातिल अफसरों और जन-द्रोहियों का सफाया

दण्डकारण्य में माड़ डिवीजन ऐसा इलाका है जो ऊंची पहाड़ियों और घने जंगलों से व्याप्त तथा छापामार युद्ध के लिए बेहद अनुकूल है। यहां रहने वाले निहायत गरीब आदिवासी लोग आभी भी, मुख्य रूप से चलित खेती पर ही निर्भर हैं। इस भीषण गरीबी के बावजूद, वे अंग्रेजी उपनिवेशवाद विरोधी संघर्ष के इतिहास के धनी हैं। वे दमन का हमेशा विरोध करते आए हैं। इस बहादुर जनता की हत्या करने तथा उनका नेतृत्व कर रही पार्टी का सफाया करने के लिए हत्यारे पुलिस वाले पाशविक बल का प्रयोग करते हुए आक्रामक हमले कर रहे हैं। इनको सबक सिखाने के लिए कोय्यूर शहीदों की शूरतापूर्ण कुरबानी की प्रेरणा से छापामारों ने 20 फरवरी, 2000 को एक जबर्दस्त घात हमला किया जिसमें कई पुलिस वाले और उनके गोपनीय सैनिक (ये सभी पुलिस के मुखबिर ही थे जिनमें से कुछ पूर्व नक्सली भी थे।) टुकड़े-टुकड़े कर दिए गए। किसी एक हमले में 24 लोगों के मारे जाने और उनके तमाम हथियार छीने जाने की यह सबसे पहली घटना थी। इस पर लुटेरे शासक वर्गों, उनके भाड़े के टट्टुओं, उनके राज्य-यंत्र तथा उनके इशारों पर नाचने वाली मीडिया ने ढेरों आंसू बहाए। खासतौर पर इस हमले में भास्कर दीवान नामक सहायक पुलिस अधीक्षक तथा समर नामक गोपनीय सैनिक के मारे जाने पर लोगों ने खुशियां मनाईं। माड़ डिवीजन की जनता के प्यारे सपूत कॉमरेड सोमन्ना, सबिता, कविता, रमेश और उन्हें अपने घर में आश्रय देने वाले किसान लिंगा की पाशविकता से की गई हत्या में इन दोनों का हाथ रहा। सहज ही इनकी मौत से लोगों में पर्व का माहौल बन गया।

लेकिन इनकी मौत को समाचार पत्रों ने बढ़ा-चढ़ाकर लिखा। संघर्ष के इलाके से दूर रहने वाली जनता में इनकी कुरबानी की गाथाएं लिखी गईं। नक्सलवादियों को देशद्रोही के रूप में चित्रित करते हुए अखबारों में नीचता से प्रचार किया गया। भारत-पाकिस्तान की साजिश का शिकार बनकर देशभक्ति के नाम पर अपनी जान को जोखिम में डालकर कार्गिल जंग लड़ने वाले सैनिकों से इन हत्यारे पुलिस वालों की तुलना की गई और नक्सलवादियों की तुलना विदेशी भाड़े के सैनिकों से की गई। वाकुलवाही में जान गंवाए पुलिस वालों के हंतक इतिहास को छिपाकर उनकी शहादत की जय-जयकार करने वाले अखबारों ने पुलिस बलों के पाशविक हमलों में हो रही बेकसूर किसानी जनता की मौतों पर चुप्पी साधी रखी है। भले ही ये पूंजीवादी अखबार कितना भी भड़काऊ खबरें लिखें, दिनोंदिन तेज हो रहा आर्थिक और राजनीतिक संकट किसी भी कोने में जीने वाले लोगों को संघर्ष का बिगुल बजाने पर मजबूर करेगा ही, तथा उन्हें शासक वर्गों के भाड़े के सैनिकों के खिलाफ हथियारबन्द होने पर मजबूर करेगा ही।

एडसागढ़ घात हमले में एक और हत्यारे का सफाया

पिछले कुछ समय से आन्ध्र और दण्डकारण्य (तीन राज्यों) की पुलिस ने माड़ डिवीजन को अपना निशाना बना रखा है। वे चिल्ला-चिल्लाकर प्रचार कर रहे हैं कि माड़ डिवीजन क्रान्तिकारी क्रियाकलापों का केन्द्र बन गया। अखबार भी इस प्रचार को अपनी ओर से हवा देते हुए पहाड़ों के माप और इलाके का क्षेत्रफल आदि के आंकड़े छाप रहे हैं। खासतौर पर मध्यप्रदेश सरकार ढेरों पैसा खर्च करते हुए अनगिनत सुधार कार्यक्रम चला रही है। छापामारों की गतिविधियों और क्रान्तिकारी क्रियाकलापों की सूचना इकट्ठा करने के लिए भीतरी जंगलों से भी मुखबिरों का ढांचा बनाना ही इन सुधार कार्यक्रमों के पीछे सरकार की मंशा है, न कि जनता के हितों की रक्षा करना है। नीचे से ऊपर तक सरकारी अमले के सभी अधिकारी अपने-अपने ओहदे के अनुसार करीब तीन-चौथाई धन खाए जा रहे हैं। एक ओर भीषण दमन और दूसरी ओर पैसे के लालच में मखबिरों की सृष्टि, इस दोतरफा हमले का मुकाबला करते हुए स्थानीय जनता पार्टी के नेतृत्व में हासिल उपलब्धियों को बनाए रखना चाहती है।। उन उपलब्धियों पर पानी फेरने के कोशिश करने वाले दुश्मनों को धूल चटा रही है। एडसागढ़ का विस्फोट इसी का हिस्सा है।

पार्टी की केन्द्रीय कमेटी के तीन शीर्षस्थ नेताओं की एक साथ हत्या करने के बाद, फूले न समाते हुए क्रान्तिकारी आन्दोलन की कमर टूट जाने और खत्म होने के दावे कर रहे पुलिस बलों का जहां-तहां सफाया कर दिया जाए, केन्द्रीय कमेटी द्वारा किए गए इस आह्वान पर अमल करते हुए छापामारों ने इस विस्फोट की योजना बनाई। इस घात हमले में सुभरन नामक `गोपनीय सैनिक' कुत्ते की मौत मर गया। सुभरन एक विश्वासघाती था जिसके हाथ अप्रैल 1999 में कोहकामेट्टा गांव में हमारे छापामार सदस्य कॉ. राकेश की पाशविक हत्या में शामिल थे। इस `गोपनीय सैनिक' ने गांव में रहते हुए, छापामारों के साथ दोस्ती का नाटक करके, जब मौका मिला, तब सहसा कॉ. राकेश पर हमला कर धोखेबाजी से उनकी हत्या कर दी थी। इस विस्फोट में सुभरन के चीथड़े उड़ा दिए गए और उस गश्ती दल कमाण्डर, उप कमाण्डर के अलावा तीन पुलिस जवान छापामारों की गोलीबारी में घायल हो गए। एक घण्टे से ज्यादा देर चली इस गोलीबारी के बाद छापामार अपनी तरफ बिना किसी नुकसान के क्रान्तिकारी नारे लगाते हुए चले गए। `मारो - भागो' की रणनीति से दुश्मन पर किए इस हमले की खबर माड़ के जंगलों में तेजी से फैल गई। जंगल-पहाड़ों के बीच बसे लोगों ने छापामारों को अपने दिल में बसाकर बचा लिया। मार्च 2000 में उत्तर बस्तर के छापामारों ने बजरंगबलि के निकट एक घात हमले का प्रयास किया जिसमें बस्तर के एस. पी. सहित अन्य उच्च अधिकारी बाल-बाल बच गए। बालाघाट डिवीजन में छापामारों ने एक सफल हमला किया जिसमें एक थानेदार और हवलदार मारे गए और उनके हथियार छीने गए।

कोय्यूर शहीदों को दण्डकारण्य छापामार इलाके का जोहार!

2 दिसंबर, 1999 की रात बी.बी.सी. ने जब रेडियो पर हमारे प्यारे नेताओं की हत्या की खबर दी, पल भर के लिए सभी छापामार स्तब्ध रह गए। इस खबर से मानों क्रान्तिकारी श्रेणियों पर गाज ही गिर गई। उसके बाद इस शोक से उबरते हुए, भारी मनों से उन्होंने मुट्ठी भींचकर उन तीनों योद्धाओं ने जनता में इनकी शहादत की खबर पहुंचाई। सरकार की पाशविकता की कड़ी निंदा की।

डीएकेएमएस, क्रान्तिकारी आदिवासी महिला संगठन, क्रान्तिकारी बाल संगठन के अलावा, ग्राम सुरक्षा दस्तों, एरिया सुरक्षा दस्तों, गांवों के सैकड़ों पार्टी कार्यकर्ताओं, ग्राम राज्य कमेटियों, कृषि विकास कमेटियों, क्षेत्रीय विकास कमेटियों - सभी जन संगठनों, पार्टी संगठनों और राजसत्ता के अंगों ने मुट्ठी भींचकर कसम खाई कि आंध्रप्रदेश के मुख्यमंत्री चंद्रबाबू नाइडू और पुलिस महा निदेशक दोरा की फासीवादी जोड़ी को इन क्रान्तिकारी योद्धाओं की जान की कीमत चुकानी होगी।

पिछले साल 28 जुलाई से 3 अगस्त तक पूरे दण्डकारण्य में `शहीद सप्ताह' क्रान्तिकारी संकल्प के साथ मनाया गया था। उसके बाद, एक हफ्ते के अंदर ही एक और योद्धा की शहादत ने दण्डकारण्य की क्रान्तिकारी श्रेणियों को झकझोर किया था। नौजवान छापामार नेता कॉ. विक्रम (श्रीनिवास) ने छुरिया थाने पर हमला करके हथियार छीन लेने के प्रयास में, अपनी जान की रत्ती भर भी परवाह न करते हुए, असमान शूरता का प्रदर्शन करते हुए कुरबानी दी। इस शहादत से दर्जनों छापामारों की आंखों में आंसू भर आए। इस सदमे से उबरे ही नहीं थे, कि पार्टी के तीन सर्वोच्च नेताओं की मृत्यु से क्रान्तिकारी जनता और क्रान्तिकारी श्रेणियों को गहरा झटका लगा। लेकिन, जैसा कि कहा जाता है कि `योद्धा की मौत सिर्फ आंसू ही नहीं लाती, कर्तव्यबोध भी कराती है', इसी संकल्प के साथ छापामार इलाके की जनता ने शहीदों की याद में निर्मित स्मारकों के सामने विनम्रता से खड़े होकर, फौजी अनुशासन से सिरों पर से अपनी पगड़ियां उतारकर खामोशी रखी।

पार्टी ने क्रान्तिकारी जनता और क्रान्तिकारी कतारों का आह्वान किया कि शहीद नेताओं को याद करते हुए दिसंबर 1999 से 28 जुलाई, 2000 तक स्मृति-सभाओं, दुश्मन के खिलाफ बदले की कार्रवाइयों और विरोध कार्यक्रमों का आयोजन करें। इस आह्वान को पाकर दण्डकारण्य छापामार इलाके के सभी डिवीजनों में हजारों लोगों ने सैकड़ों सभा-बैठकों का आयोजन किया। इन सभा-बैठकों में योद्धाओं की कुरबानी की प्रशंसा की गई। विभिन्न डिवीजनों में इस जघन्य हत्याकाण्ड के विरोध में अपनी सुविधा अनुसार अलग-अलग तारीखों में बंद का आह्वान किया।

उत्तर बस्तर डिवीजन के केशकाल, कोंडागांव, डौला, कोइलीबेड़ा इलाकों के कई गांवों की जनता ने डिवीजनल कमेटी के आह्वान पर 15 जनवरी, 2000 को बंद में भाग लिया। बंद के पहले से ही, यानी 10 दिसंबर, 1999 से 10 फरवरी, 2000 के बीच डिवीजन भर में सभाएं आयोजित की गईं। 100 गांवों में आयोजित सभाओं में करीब 5,000 स्त्री-पुरुषों और बच्चों ने भाग लिया। करीबन 30 प्रचार दलों ने जिनमें डीएकेएमएस और केएएमएस के 300 स्त्री-पुरुष कार्यकर्ता शामिल हुए थे, 110 गांवों में शहीद नेताओं के आदर्शों का प्रचार किया। इस प्रचार कार्यक्रम में दर्जनों बैनरों, सैकड़ों पोस्टरों तथा हजारों पर्चों का प्रयोग किया गया। इस प्रचार कार्यक्रम में शहीदों की कुरबानियों की प्रशंसा की गई। जनता की सेवा में समर्पित भारत के सर्वहारा के सर्वोत्तम सपूतों के आदर्शों को ऊंचा उठाया गया। लोगों की उनकी शानदार क्रान्तिकारी जिन्दगी के बारे में विस्तारपूर्वक बताया गया।

6 महिलाओं सहित जन मिलिशिया के 25 हथियारबंद लोगों ने डौला पुलिस थाने पर गोलीबारी करके कायर पुलिस वालों में दहशत फैला दी। इसके बाद 20 छापामारों और जन मिलिशिया सदस्यों ने अंतागढ़ पुलिस थाने पर गोलीबारी करके इस हत्याकाण्ड के प्रति अपना विरोध जताया। पुलिस इतना घबराई कि थाने के अंदर ही रहकर रात भर अंधाधुंध गोलीबारी करती रही। सरंडी में जन मिलिशिया के सदस्यों ने पटवारी के सरकारी दफ्तर में तोड़फोड़ की। डिवीजन के 100 छापामारों और मिलिटेंटों की टुकड़ी ने छापामारों पर हमले किए। कुछ मुखबिरों की संपत्ति जब्त कर ली गई। 14 जनवरी, 2000 को `दुर्ग' नामक मुखबिर का सफाया कर दिया गया। मध्यप्रदेश राज्य परिवहन निगम की एक बस में आग लगा दी गई।

माड़ डिवीजन में भी 15 जनवरी को बंद का आह्वान किया गया। कोय्यूर मुठभेड़ में पुलिस के हाथों जान गंवा चुके भारत की क्रान्ति के सर्वोच्च नेताओं की याद में तथा मध्यप्रदेश पुलिस द्वारा गांव कोहकामेट्टा में बेकसूर किसान राजू नरोटी की अमानवीय हत्या के खिलाफ यह बंद रखा गया। बंद का प्रचार पोस्टरों और पर्चों के जरिए किया गया। कोहकामेट्टा, इंद्रावती, परालकोट छापामार दस्तों ने बंद को सफल बनाने का पूरा प्रयास किया।

पिछले साल 25 जुलाई को कोटेनार गांव में चार छापामारों और एक बेकसूर किसान की हत्या और किसान की बेटी को घायल करने की घटना को जनता अभी भूली ही नहीं थी, पुलिस द्वारा की गई कई और हत्याओं से माड़ की जनता जनतंत्र की आड़ में जारी इस हंतक व्यवस्था की असलीयत समझ सकी। जनता ने उसके बीच उनके लिए सालों से क्रान्तिकारी क्रियाकलापों में संलग्न कॉमरेड सोमन्ना (गौरन्ना), कॉमरेड सबिता, कॉमरेड कविता के अलावा माड़ के पहाड़ों में जन्म लेकर मानवजाति की मुक्ति की खातिर जान गांवाने वाले माटी पुत्र कॉ. गुडसा और बेकसूर किसान लिंगा की पाशविक हत्याओं का बदला लेने की शपथ ली।

दक्षिण बस्तर डिवीजन में कोय्यूर शहीदों की याद में पार्टी ने 7 मार्च, 2000 को बंद का ऐलान करके लोगों से आह्वान किया कि दिनोंदिन बढ़ रहे पुलिस दमन और 15 नवंबर, 1999 को पूर्व

क्रान्तिकारी कॉ. भीमन्ना की झूठी मुठभेड़ में हुई हत्या का विरोध किया जाए। डिवीजन में कोंटा, किष्टारम, गोल्लापल्लि, कलिमेला, जेगुरुगोण्डा, पामेड स्थानीय छापामार दस्तों तथा मद्देड, भैरमगढ़, नेशनल पार्क छापामार दस्तों ने सैकड़ों गांवों में शहीदों की याद में स्मृति-सभाओं का आयोजन किया। इन सभाओं में शहीद नेताओं की शानदार कुरबानी की राह पर चलने का संकल्प लिया गया। बाद में, डिवीजन के सभी स्त्री-पुरुषों तथा बच्चों-बड़ों ने पार्टी द्वारा आहूत बंद में सक्रिय भाग लिया। पर्चों और पोस्टरों के जरिए जन संगठनों एवं सांस्कृतिक दलों ने शहीदों की कुरबानी की शूर-गाथाओं को विशाल जन-समुदायों में प्रचार किया गया।

बीजापुर में सब डिवीजनल मेजिस्ट्रेट के दफ्तर को बमों से उड़ाकर लोगों ने ऐलान किया कि इस देश की न्याय व्यवस्था लुटेरों और अमीरों की कठपुतली है। भैरमगढ़-बीजापुर सड़क पर चार स्थानों में, बीजापुर-गंगलूर एवं गंगलूर-मिरतुल सड़कों पर कई स्थानों में अस्थाई अवरोध खड़े कर दिए गए। बीजापुर में पोस्टर चस्पा कर रहे मिलिटेंटों पर सड़क पर घात लगाए बैठे पुलिस वालों ने गोलीबारी की, लेकिन वे बाल-बाल बचकर जंगल में चंपत हो गए। जेगुरगोण्डा गांव के निकट एक नदी पर निर्मित पुल को उड़ा दिया गया जिससे यातायात प्रभावित हो गया। चिंतलनार पुलिस थाने के पास में जन मिलिशिया के कार्यकर्ताओं ने बम विस्फोट करके पुलिस वालों के दिल दहला दिए। चिंतागुफा में भी जन मिलिशिया सदस्यों ने पुलिस थाने के पास बम विस्फोट किया। उसके पास ही मौजूद पटवारी के दफ्तर में आग लगाकर जमीनों के सारे फर्जी कागजात नष्ट कर दिए। जेगुरुगोण्डा इलाके में 25 गांवों के कम से कम 600 लोगों ने सड़क पर 22 स्थानों में अवरोध खड़ा कर दिए। नेशनल पार्क क्षेत्र में 44 गांवों में आयोजित स्मृति-सभाओं में 5,000 से ज्यादा लोगों ने भाग लिया।

मद्देड में छापामारों और कुछ जन मिलिशिया सदस्यों से मिलकर वन विभाग के रेंजर के दफ्तर को और उसके बगल में स्थित विकासखण्ड कार्यालय में तोड़फोड़ की। इसके पहले उन्होंने उन दफ्तरों से वायरलेस सेट, टाइप मशीन और साइक्लोस्टाइल मशीन उठा लाई और उन्हें सुरक्षित जगह पहुंचा दिया ताकि क्रान्ति की जरूरतों पर इस्तेमाल किया जा सके। बाद में, आवापल्लि में सीमा सड़क संगठन के चार ट्रकों को जला दिया गया। विकास का ढोंग करते हुए, जनता की जरूरतों को बूरी तरह नजरअंदाज़ करते हुए सरकार द्वारा चलाए जा रहे सड़क निर्माण में ये ट्रक लगे हुए थे। कोंटा-दोरनापाल सड़क पर 600 लोगों, तथा बासागूडेम-चिंतलनार सड़क पर 100 स्त्री-पुरुषों ने बंद में हिस्सा लिया। कोंटा क्षेत्र में दो सरकारी बसों में आग लगा दी गई जिनमें से एक आंध्र की और एक मध्यप्रदेश की थी।

डिवीजन के व्यवसायियों, फुटकर व्यापारियों, छात्रों, बुद्धिजीवियों सहित सभी जनता ने बंद का पूरा समर्थन किया। आगामी शहीद-सप्ताह को सफल बनाने के स्पेशल जोनल कमेटी द्वारा किए गए आह्वान को सफल करने के प्रयास में दस्ते जून 2000 से ही लग गए हैं।

15 अगस्त की आजादी झूठी है!
26 जनवरी का गणतंत्र एक फरेब है!!

दण्डकारण्य छापामार इलाके में भारत के शासक वर्गों के `राष्ट्रीय' पर्वों का बहिष्कार एक क्रान्तिकारी परम्परा बनकर उभरा है। दरअसल, भीतरी जंगलों में जी रहे भोली-भाली किसान जनता को इन पर्वों से कोई लेना-देना नहीं है। उन्हें मालूम ही नहीं है कि इन पर्वों का मतलब क्या है। सिर्फ सड़कों के पास स्थित गांवों और कुछ बड़े गांवों में, जहां इस लुटेरी व्यवस्था के नुमाइंदों के तौर पर सरपंच और स्कूलें होती हैं, सरकार पहले ही खबर करती है, तो `झण्डा पर्व' के रूप में मनाया जाता है। इन `झण्डा पर्वों' में हल्दी, सिंदूर और नारियल का प्रयोग किया जाता है। लेकिन, ज्यों-ज्यों जनता क्रान्तिकारी आन्दोलन में गोलबन्द होने लगी और आन्दोलन के प्रभाव का दायरा बढ़ने लगा,क इन `झण्डा पर्वों' का ढोंग समझ रहे हैं। जब-तब जंगलों में खाकी बलों की बड़ी संख्या में तैनाती, निर्दोष जनता को प्रताड़ित करना और हताहत करना, महिलाओं को बेइज्जत करना आदि पुलिसिया जुल्मों को देख जनता को सरकार के जन विरोधी चरित्र को समझने में कोई कठिनाई नहीं हो रही है। इससे लोगों को इन `पर्वों' का निकम्मेपन और भी स्पष्ट हो रहा है।

अंग्रेजी साम्राज्यवादियों ने दण्डकारण्य के आदिवासियों को हर तरह से कुचल डाला था। जनता की संघर्षशील चेतना की उन्होंने बर्दाश्त नहीं की। जब-जब बस्तर के आदिवासियों ने "यह जंगल हमारा है, इस पर हम ही राज करेंगे, इसके मालिक हम ही हैं", कहकर हथियारबन्द विद्रोह का परचम फहराया, हर बार राजाओं और सामंतों ने साम्राज्यवादियों से सांठगांठ करके हरे जंगलों में खून बहा दिया। ब्रितानी साम्राज्यवादियों के प्रत्यक्ष शासन के समाप्त होने की खुशी में 15 अगस्त को और भारत के शासक वर्गों के अपने संविधान के लागू होने की खुशी में 26 जनवरी को, पिछले पांच दशकों से मनाते रहने के बाद भी गरीबी और बदहाली और बढ़ चुकी हैं। इस सच्चाई को लोगों के सामने ले जाते हुए क्रान्तिकारी जन संगठनों और पार्टी के आह्वान पर विस्तृत तौर पर इन झूठे पर्वों का बहिष्कार किया जा रहा है।

15 अगस्त का बहिष्कार करने की अपील करते हुए स्पेशल जोनल कमेटी द्वारा प्रकाशित पर्चों को लेकर शासक वर्गों के नेताओं और पुलिस के आला अफसरों ने क्रान्तिकारियों के खिलाफ देशद्रोही का ठप्पा लगाते हुए दुष्प्रचार मुहिम छेड़ दी। पुलिस महानिदेशक सुभाष चंद्र त्रिपाठी और मौजूदा जेल मंत्री महेन्द्र कर्मा ने अखबार वालों के सामने पर्चे पेश करके नक्सलवादियों को देशद्रोही कहने के लिए पर्याप्त सबूत होने का दावा किया। लेकिन अपने इन बयानों से इस दुष्ट जोड़ी ने साबित किया कि वे क्रान्तिकारियों के उद्देश्यों और नीतियों के बारे में कुछ भी नहीं जानते हैं। "हम साफ तौर पर कश्मीर की जनता की जायज मांग का समर्थन करते हैं। हर राष्ट्रीयता के अलग होने के अधिकार सहित, आत्मनिर्णय के अधिकार का हम समर्थन करते हैं (इन बेवकूफों को शायद ही मालूम हो कि स्वतंत्रता आन्दोलन

के दौरान कांग्रेस ने भी जनता को इसकी हामी भरी थी)। कारगिल युद्ध भारत और पाकिस्तान के शासक वर्गों की सृष्टि है। कारगिल न तो भारत का है, न ही पाकिस्तान का, बल्कि कश्मीरियों का है" - हमारी इस स्पष्ट समझ को तोड़-मरोड़कर, हमारी छवि को बिगाड़ने के नापाक इरादे से पुलिस अधिकारियों और महेन्द्र कर्मा द्वारा किए जा रहे दुष्प्रचार की जनता ने कड़ी निंदा की।

दण्डकारण्य भर में 15 अगस्त, 1999 को जनता ने `काला दिवस' मनाया। दक्षिण बस्तर के 100 गांवों में काला झण्डा फहरा दिया गया। इस कार्यक्रम में कई शिक्षकों ने भी सहयोग दिया और इस मौके पर नवजनवादी क्रान्ति में शिक्षकों-छात्रों की भागीदारी पर जोर दिया गया। कुछ गांवों में शिक्षकों ने सरकार को मालूम होने से अपनी नौकरियों के खतरे में पड़ जाने के डर से औपचारिक तौर पर तिरंगा फहराया, पर बाकी तमाम कार्यक्रम को वापस लिया और स्कूलें बंद रख दीं। कुछ जगहों पर शिक्षकों द्वारा तिरंगा फहराने के बाद जन संगठन के कार्यकर्ताओं ने जनता को संबोधित किया और झण्डे की गद्दारी पर रोशनी डाली। पिछले 50 सालों से इस झण्डे के साये में जी रहे भारतवासी आज भी रोटी, कपड़ा, मकान के लिए तथा आजादी के लिए मुहताज हैं। एक समय, आजादी के लिए लड़ने वाले आदिवासी नेता बस्तर के गुण्डादुर, गड़चिरोली के सडिमेक बाबूराव, आदिलाबाद के कोमुरम भीम, मन्यम के अल्लूरी सीताराम राजू, कोरापुट के लक्ष्मण नायक आदि को अंग्रेजी शासकों ने बर्बरता से कत्ल किया था, वहीं आज भारत के शासक वर्ग संघर्षरत लोगों के कत्लेआम कर रहे हैं। अंग्रेजी शासक और भारतीय शासक एक ही थैली के चट्टे-भट्टे हैं, मूलतया उनमें कोई फर्क नहीं है। उन लुटेरों का तिरंगा उत्पीड़ितों का नहीं है, बल्कि सदियों की कुरबानियों से लाल-लाल हुआ लाल झण्डा ही हमारा है। जहां मौजूदा लुटेरों के शासन में स्कूली बच्चों का भविष्य अंधकार में है, वहीं वर्तमान संघर्ष ही उनके आशामय भविष्य को सुनियोजित करेगा। मुख्य रूप से वक्ताओं ने इन बातों पर जोर दिया। इन जन सभाओं की विशेषता यह है कि पंच-सरपंच खामोश दर्शक बनकर रह गए।

26 जनवरी, 2000 को भी दण्डकारण्य के गांवों में ऐसा ही हुआ है। विभिन्न स्तर की पार्टी कमेटियों और जन संगठनों ने लोगों से कहा कि 90 प्रतिशत भारतवासियों की नजर में मृत संविधान की समीक्षा करने के दावे लाश की सज-धज के बराबर हैं। समीक्षा से लोगों की जिंदगी में कोई बदलाव तो नहीं आने वाला है, बल्कि जन संघर्षों को तेज करके इस संविधान के 50 वर्ष पूरे होने की जश्न मनाने में मशगूल हैं, वहीं उत्पीड़ित लोगों को चाहिए कि वे विशेष छापामार इलाकों को मुक्त क्षेत्रों में विकसित करने के लिए अपने संघर्षों को तेज करें। प्राप्त सूचना के मुताबिक दक्षिण बस्तर डिवीजन के पूसवाका और सिलिंगेर गांवों में 105 छात्रों सहित 400 लोगों ने विरोध दिवस मनाते हुए काले झण्डे फहरा दिए। गड़चिरोली डिवीजन के ग्राम बूरगी में 250 छात्रों और 100 ग्राम वासियों ने मिलकर तिरंगा जलाकर इस लुटेरी व्यवस्था के प्रति अपनी नफरत प्रकट की।

13वीं लोकसभा चुनाव का बहिष्कार ग्राम पंचायत के चुनावों से जनता भ्रम में

13वीं लोकसभा चुनाव की घोषणा के बाद जुलाई 1999 में पार्टी ने चुनाव बहिष्कार का कार्यक्रम जनता के सामने रखा। दण्डकारण्य में गड़चिरोली (महाराष्ट्र) में चुनाव पहले दौर के तहत सितंबर में पूरे हुए तथा मध्यप्रदेश के जिलों में तीसरे दौर के तहत हुए। जनता को चुनाव का बहिष्कार करने से रोकने के लिए महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश और उड़ीसा की सरकारों ने बड़े पैमाने पर पुलिस बलों की तैनाती कर दी और जनता को मतदान में भाग लेने को कहते हुए प्रचार शुरू किया। एक महीने पहले से ही सरकारी अफसरों और पुलिस ने बड़ा प्रचार अभियान छेड़ा था। केन्द्रीय अर्ध-सैनिक बलों और एनसीसी के कैडटों से मतदाताओं को पूरी `सुरक्षा' देने, नक्सलवादियों की विघटकारी गतिविधियों पर आसमान पर से नजर रखने के लिए हेलिकॉप्टरों का प्रयोग करने आदि कई दावे दूरदर्शन और रेडियो के माध्यम से किए गए। जहां अखबारों में मतदाताओं को निश्चिंत हो मतदान में भाग लेने की हिदायत दी गई, वहीं संघर्ष के इलाकों में यह धमकी दी गई कि जो लोग वोट नहीं डालेंगे उन्हें नक्सलवादी मानकर कार्रवाई की जाएगी।

ज्यों ही चुनाव की तारीख नज़दीक आई, पुलिस ने विभिन्न डिवीजनों में विभिन्न प्रकार का बरताव किया। यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि चुनाव की प्रक्रिया के दौरान पुलिस को हर दम यह डर सताता रहा कि चुनाव के मौके पर पुलिस की सरगर्मियों का फायदा उठाकर कहीं छापामार घात न लगाएं और हथियारों पर छापामारों का कब्जा न हो जाए। लोगों में इसकी खूब चर्चा हुई कि जहां अधिकारी ये आदेश देते रह गए कि वाहनों का प्रयोग नहीं किया जाए और मतपेटियों को ले जाते समय जनता को साथ रखा जाए, वहीं निचले स्तर के पुलिस जवानों को दिन को चैन और रातों की नींद से वंचित होना पड़ा। एक ओर आम पुलिस वालों का मनोबल काफी गिरा हुआ था, दूसरी ओर कुछ वरिष्ठ अधिकारियों ने जनता पर जुल्म और अत्याचारों का सिलसिला जारी रखा। बालाघाट जिले में अगस्त माह से जन संगठनों के कार्यकर्ताओं की गिरफ्तारियां शुरू हुईं। आन्ध्रप्रदेश के ग्रे-हाउण्ड्स बलों को उत्तर बस्तर डिवीजन में तैनात करना इस चुनाव की एक विशेषता रही। आन्ध्र के अनुभव से सीखे सबकों को उत्तर बस्तर की सड़कों पर आजमाया गया। पहले से खस्ता हाल, ऊबड़-खाबड़ सड़कों को बारूदी सुरंगों के डर से ट्रैक्टरों से जुता दिया गया। दक्षिण बस्तर के दूर-दराज के गांवों में स्थित मतदान केन्द्रों में लाठियों से लैस होमगॉर्ड तैनात किए गए थे। पुलिस की पूरी शक्ति का प्रदर्शन सड़कों पर ही केन्द्रित रहा। जब बारूदी सुरंगों और छापामारों के हमलों के डर से पुलिस ने ही भीतरी जंगलों में कदम रखने की हिम्मत नहीं की, तो भला चुनाव

लड़ने वाले उम्मीदवारों को मतदाताओं को मुंह दिखाने की हिम्मत कैसे होगी? हालांकि वे सड़क किनारे के गांवों और कस्बों का दौरा करके संतुष्ट रह गए। हमेशा की तरह चुनावी पार्टियों के नेताओं ने संघर्ष के इलाकों में तथा दूरस्थ गांवों में कदम रखने का साहस नहीं किया।

जहां तक मतदान की प्रक्रिया का सवाल है, कई जगहों पर मतदान अधिकारियों ने महज रस्म-अदायगी के तौर पर काम किया। ऐसे केन्द्र बहुत ही कम होंगे जहां पर शाम के 5 बजे तक ठीक-ठाक मतदान की प्रक्रिया चली हो। ऐसे अधिकारी ही ज्यादा होंगे जिन्होंने दिन भर मतदान केन्द्र में बैठकर भी एक भी मतदाता को आकर्षित नहीं किया। बालाघाट-भण्डारा डिवीजन में परसवाड़ा और मलाजखण्ड इलाकों के 30 गांवों में चुनाव का संपूर्ण बहिष्कार किया गया। कई गांवों में सिर्फ 5-10 वोट पड़े जो पंच-सरपंच, पुलिस पटेल आदि मुखियाओं द्वारा डाले गए। दक्षिण बस्तर के 200 गांवों में एक भी वोट नहीं डाला गया। बाकी गांवों में गांव के मुखियाओं ने ही वोट डाले। उत्तर बस्तर डिवीजन के 25 गांवों में 50 से कम वोट पड़े। गड़चिरोली डिवीजन में पुलिस के `हस्तक्षेप' के बदौलत 25% मतदान संभव हुआ। उधर, माड़ डिवीजन का विशेष रूप से जिक्र करना होगा। वहां के कुछ मतदान केन्द्रों में पहुंचने के लिए 50-50 कि.मी. का सफर पैदल तय करना पड़ता है। रास्ते में कई नदियों और नालों को पार करना पड़ता है। 1000 से 3000 फुट ऊंची पहाड़ियों को चढ़ते-चढ़ते दम भर जाता है। इतनी दिक्कतों को झेलकर `जनतंत्र' की रक्षा करने के लिए निकलने वाले कर्मचारियों को यह डर हमेशा सताया करता है कि उनके साथ अगर पुलिस वाले रहेंगे, तो जनतंत्र की रक्षा वाली बात को छोड़ भी दें तो उनकी अपनी रक्षा का मामला खतरे में पड़ सकता है। इसलिए उन्होंने बगैर पुलिस की मदद के ही मतदान का संचालन करना बेहतर समझा। पिछले 50 सालों के जनतंत्र से लोगों की कितनी भलाई हो चुकी है, इसे अपनी आंखों से देखने वाले कर्मचारी मतदाताओं के चक्कर न जाकर खाली पेटियों से लौट गए।

आमतौर पर संघर्ष के मजबूत गांवों में मतपेटियों को तोड़ने और मतदान पत्रों को जलाने जैसी विरोधात्मक कार्रवाइयां होती रहती हैं। ऐसे गांवों में पुनरमतदान की प्रक्रिया नहीं चलाई जा रही है। अब अधिकारियों ने एक तरीका यह खोजा कि वे मतदान केन्द्रों में जाने के बजाए कस्बों में ही बैठकर मतपेटियों को खुद ही वोटों से भरकर जनतांत्रिक प्रक्रिया को पूरा करने का दावा कर रहे हैं। कुछ अधिकारी अपने उच्च अधिकारियों के आदेशों पर अमुख छाप पर ही मुहर लगाकर आंकड़ों के प्रतिशत को अखबारों में छपवाकर सभी को गुमराह कर रहे हैं। लेकिन इस बार के चुनाव में अधिकारी पुव्वर्ति और पूसबाका (दक्षिण बस्तर) गांवों में जनता की सतर्कता का अंदाजा लगाने में विफल हो गए और दोपहर तक एक भी वोट नहीं पड़ने से नाराज होकर जनतंत्र की लाज बचाने का जिम्मा अपने `हाथों' में लेने का निश्चय किया। चूंकि यह खुलेआम करने की हिम्मत उनमें नहीं थी, इसलिए वे मतदान केन्द्र से कुछ दूर चलकर जंगल में पेड़ के नीचे बैठकर मतपत्रों पर मुहर लगाने के काम में मशगूल हो गए। उन्होंने मतदान प्रतिशत बढ़ाकर सबकी वाहवाही लूटना चाहा। लेकिन उनकी उम्मीदों पर पानी तब फिर गया जब वे वहां गश्त लगा रहे ग्राम सुरक्षा दस्ते की नजर में पड़ गए। इनके काले कारनामों से क्रोधित हो उठे नौजवानों ने डंडे उठाए, तो अधिकारी वहां से नौ दो ग्यारह हो गए। और उन युवकों ने इसकी सूचना पार्टी को दी।

इस तरह, दण्डकारण्य में 13वीं लोकसभा के चुनाव की नौटंकी पूरी हो गई। मनमाने ढंग से धांधलियां करके कृत्रिम रूप से मतदान प्रतिशत में इजाफा करके अखबारों में झूठे बयान दिए गए कि नक्सलवादियों का प्रभाव इस चुनाव में नहीं रहा और जनता ने मतदान में भाग लिया। सभी प्रसार माध्यमों ने सरकार के सुर में सुर मिलाया।

फर्जी चुनावों के बहिष्कार की प्रचार सभाएं

डिवीजन	सभाओं की संख्या	उपस्थित लोगों की संख्या	डीएकेएमएस के दल	केएएमएस के दल	प्रचार किए गए गांव	बैनर	पोस्टर
दक्षिण बस्तर	40	28,000	47	17	350	110	500
उत्तर बस्तर	12	2,000	5	2	70	50	200
माड़	3	600	2	-	12	-	-

टिप्पणी: 1) उपरोक्त सभाओं में उन सभाओं को शामिल नहीं किया गया जो चुनाव के एक माह पहले से ही छापामारों द्वारा कम से कम हर दिन दो गांवों की गईं, और जिनमें सैकड़ों लोगों की भागीदारी रही।

2) प्रचार सामग्री में स्पेशल ज़ोनल कमेटी द्वारा प्रकाशित 5,000 पर्चे और अलग-अलग डिवीजनल कमेटियों द्वारा प्रकाशित हजारों पर्चे भी शामिल हैं।

3) चुनाव प्रचार में लगे कांग्रेस पार्टी के एक जीप को उत्तर बस्तर डिवीजन में छापामारों ने जला दिया।

हामारी चुनौती है कि यदि सरकार को अपने `जनतंत्र' पर थोड़ा भी सम्मान है, तो वह पुलिस के हस्तक्षेप के बिना निष्पक्ष चुनाव आयोजित करके मतदान के सही आंकड़े पेश करे - डीकेएसजेडसी

चुनाव बहिष्कार को सफल बनाने पलटनों द्वारा फ्लैगमार्च

अब तक गांवों में पुलिस का फ्लैगमार्च देखने के आदी हो चुके लोगों ने इस बार के चुनाव में एक नई बात देखी है। जनता के बीच जीते हुए, दिन-रात जनता को गोलबंद करने के काम में लगे रहने वाले छापामारों ने अनोखे ढंग से गांवों में फ्लैगमार्च किया। छापामार इलाकों के उच्च सैन्य निर्माण पलटनों ने सैन्य वर्दी पहनकर, कंधों पर बंदूकें रखकर फ्लैगमार्च करते हुए चुनाव बहिष्कार के नारे लगाए। छापामारों को इस तरह गांव के बीचोंबीच गलियों में मार्च करते देख लोगों का आत्मविश्वास बढ़ गया। उन्होंने मुट्ठी भींचकर छापामारों के सुर में सुर मिलाया।

ग्राम पंचायत के चुनाव

इस वर्ष जनवरी और फरवरी महीनों में मध्यप्रदेश के बालाघाट, राजनांदगांव, दंतेवाड़ा, कांकेर और जगदलपुर जिलों में ग्राम पंचायत के चुनाव हुए। इन चुनावों में महिलाओं को 33% आरक्षण लागू किया गया। सरकार का आदेश था कि हर ग्राम पंचायत में चुनाव के जरिए नक्सलियों के प्रभाव को नकारने का मौका भी ढूंढा। गांव-गांव में जनता को गुमराह करने और उनसे वोट डलवाने के कई घिनौने प्रयास किए गए। कुछ चालबाज पंचायत सचिवों ने गांवों से अपने विश्वस्त लोगों को कस्बों में बुलाकर, वहीं उनसे सांठगांठ करके फॉरम भरकर अखबारों में निर्विरोध चुनाव की घोषणाएं कीं। जहां पर ग्राम राज्य कमेटियां मौजूद हैं तथा इस तरह की अवसरवादी राजनीति को समझने वाले लोग हैं, वहां पर ग्राम पंचायत के चुनाव को रोक दिया गया। इस बार पंचायत के चुनावों में कई किस्म की चालें चलाई गईं। कुछ जगहों पर जनता और संगठनों के नेतृत्व के अधिकारियों की साजिशों को समझने में विफल होने से वोट डाले गए।

भोलेभाले लोगों को कई सारे डर बताए गए - जैसे कि ग्राम पंचायत का चुनाव न होने पर गांव की पहचान नहीं होगी; सरकार द्वारा खोली गई राशन दुकानों में राशन नहीं आएगा; गिरफ्तार लोगों को जेलों से छुड़वाने के लिए जमानत के कागजात न मिलेंगे जिससे संगठन वालों को जेलों में सड़े रहना पड़ेगा; सरकार द्वारा स्वीकृत तालाबों, स्कूल के भवनों और सड़कों को पैसा नहीं मिलेगा वगैरह-वगैरह। इसके अलावा, यह प्रचार भी किया गया कि विधायकों और सांसदों को वोट नहीं डालेंगे, तो भी कोई दिक्कत नहीं क्योंकि वे सब शहरी और अमीर लोग हैं, लेकिन गांव के आदमी को जिसके साथ सभी का कोई न कोई रिश्ता है, वोट नहीं डालेंगे, तो हमारे अपने अधिकार को गंवा बैठेंगे। मीठी छुरी जैसे इस प्रचार का असर आंदोलन के इलाकों में एक तबके के लोगों पर पड़ा। फलस्वरूप उन्होंने चुनाव में भाग लिया।

जिन गांवों में छापामारों का नियमित रूप से जाना होता है और चुनाव के लिए अपनाए जा रहे हथकण्डों के बारे में लोगों को सावधान कर दिया गया, वहां के लोगों ने साफ तौर पर चुनाव का बहिष्कार किया। जहां पर ग्राम राज्य कमेटी है, वहां ग्राम सभा के द्वारा घोषणा की गई कि कोई सरपंच-पंच चुनाव की जरूरत नहीं है। जन विरोधियों को पहचान कर पहले ही चेतावनी दे दी गई कि वे पदों के लालच में न जाएं। उनसे कहा गया कि जनता की बात का अनसुना करने से होने वाले बुरे परिणामों के लिए तैयार हों। इससे दक्षिण बस्तर डिवीजन के कोंटा, बासागूडेम और भैरमगढ़ इलाकों के अधिकांश गांवों में जनता ने ग्राम पंचायत चुनाव का बहिष्कार किया। जहां उम्मीदवारों में से क्रान्ति के हमदर्दों ने छापामारों के कहने पर पर्चे वापस लिए, वहीं इस स्थिति का फायदा उठाकर जन विरोधी निर्विवाद निर्वाचित घोषित किए गए। बासागूडेम जनपद अध्यक्ष अजय शर्मा का चुनाव इसी तरह हुआ। लेकिन अब गांवों में यह चर्चा आम है कि ऐसे लोग ज्यादा दिनों तक अपने पदों पर विराजित नहीं रह पाएंगे और एक न एक दिन जनता इन्हें सबक सिखा देगी। उधर, निर्विरोध निर्वाचित चुन लिए गए। कोंटा इलाके में 17 जनपद सदस्यों में से 6 सदस्य, 49 पंचायतों में 23 सरपंच, 793 पंचों में से 628 पंच पुलिस और सचिवों के प्रायोजन से `निर्विरोध' चुने गए। दन्तेवाड़ा जिले में मतदान का प्रतिशत 31.5 बताया गया है। कोई संदेह नहीं कि इसका श्रेय फर्जी मतदान को जाता है। इस घोषणा के बाद से संघर्ष के इलाकों में रहने वाले `निर्विरोध' पंच-सरपंचों पर मुसीबतों का पहाड़ टूट पड़ रहा है। गांवों में जाने पर लोगों से विरोध का सामना करना पड़ रहा है। ऐसे में वे सचिवों को गाली देते हुए अपने पदों से त्यागपत्र देने लग गए। माड़ डिवीजन में भी इस्तीफे देना शुरू हो गया। उत्तर बस्तर में जनता को बगैर कुछ बताए ही सचिवों ने 12 जगहों पर क्रान्ति के हमदर्दों को पंच बना दिए। लेकिन वे बाद में मामले को समझते हुए त्यागपत्र देने तैयार हो गए।

भाकपा (मा-ले) (पीपुल्स वार) की डिवीजनल कमटियों ने जहां-तहां जनता का आह्वान किया था कि ग्राम पंचायत के चुनाव भी संसदीय व्यवस्था का हिस्सा ही हैं और ग्राम राज्य कमेटियों के निर्माण में एवं उसकी सत्ता के संचालन में मुख्य रोड़ा यह ग्राम स्तर की सरकार ही है। जनता से आग्रह किया गया कि `ग्राम राज्य कमेटियों को ही संपूर्ण अधिकार' के केन्द्रीय नारे के तहत सभी को संगठित हो जाना चाहिए और ग्रामसभाओं के जरिए उन कमेटियों का चुनाव करना चाहिए।

इस प्रचार से प्रेरणा पाकर जन मिलिशिया के सदस्यों ने जनवरी के तीसरे सप्ताह में माड़ के पहाड़ों पर चुनावी अधिकारियों के एक जीप में आग लगा दी। उत्तर बस्तर में मातल मतदान केन्द्र को जला दिया गया। जनता की चेतावनी का अनसुना करने पर कुछ लोगों की पिटाई कर दी गई, उनमें मद्देड का पंतुलु एक है।

हालांकि कई जगहों पर ग्राम पंचायत के चुनावों का बहिष्कार किया गया, परन्तु छोटे-मोटे राजनेताओं और अधिकारियों की षड़यंत्रकारी चालों का शिकार होकर एक तबके ने चुनावों में भाग लिया। इसलिए, इस चुनाव में मिले सबकों से आगामी चुनावों में सावधान रहने की बात जनता को समझा दी जा रही है।

वन-धन समितियों द्वारा जनता का शोषण

दण्डकारण्य में अलग-अलग राज्य सरकारें आदिवासियों के सुधार के बहाने कुछ प्रांतों में सोसाइटी के नाम से और कुछ जगहों पर वन-धन समिति के नाम से संस्थाएं खोल रही हैं। महाराष्ट्र के गड़चिरोली जिले में कई सालों से जारी आदिवासी सहकारी संघ जनता से वनोपज खरीदने में बुरी तरह विफल हो गए। काले व्यापारियों से सांठगांठ करने वाले भ्रष्ट अधिकारियों द्वारा की जा रही हेराफेरियों के चलते इन संगठनों से लोगों का विश्वास उड़ गया। दिन भर मेहनत करके कई खतरों से खेलकर वनोपजों को इकट्ठा करने वाले लोग जब अपनी मर्जी से कहीं भी बेचने जाते हैं, तो ये संगठन वाले उनका दमन करते थे। किसानों को मुकदमे में फंसाने का डर बताकर घूस वसूला करते थे।

मोबाइल कोर्ट के नाम पर आने वाले अधिकारी साहूकारों की दुकानों पर हमले करते थे। ऐसे में, किसानों ने एकजुट होकर अधिकारियों को सबक सिखाकर अपनी मर्जी से वनोपजों को बेचना शुरू किया। किसानों की संगठित ताकत से डरकर अधिकारियों ने दमन बंद किया। कानून भी निष्क्रिय बनकर कागजों में दब गया। छापामारों के सहयोग से किसान अपने वनोपजों और कृषि उत्पादनों को बिना किसी डर के बेचने लग गए।

फिलहाल मध्यप्रदेश के अविभाजित बस्तर में किसानों को ठीक ऐसी ही समस्या से जूझना पड़ रहा है। यहां पर वन-धन समिति के नाम पर सरकारी मार्केटिंग संस्थाओं की स्थापना की गई। ये संस्थाएं किसानों को वनोपजों और कृषि उपजों को अपने यहां बेचने पर मजबूर कर रही हैं। इस बाबत कानून भी बनाया गया। व्यापार के क्षेत्र से निजी व्यापारियों को हटा दिया गया। विशाल बस्तर जिले में सालाना कम से कम 1,000 करोड़ रुपए का वनोपजों का व्यापार होता है। इतने भारी व्यापार पर निर्भर होकर जीने वाले निजी व्यापारियों, जिनमें करीब 4,000 फुटकर व्यापारी शामिल हैं, की जिंदगी के साथ इस नीति ने खिलवाड़ किया।

सरकार द्वारा अपनाई गई इस नीति पर हर जगह विरोध के स्वर उठ रहे हैं। यहां तक कि, 13वीं लोकसभा के चुनाव में कांग्रेस के उम्मीदवारों की पराजय भी इसी नीति की देन है, यह रोना खुद उस पार्टी के स्थानीय नेताओं ने ही रोते हुए अखबारों में बयान भी दे डाले। विपक्षी पार्टियों ने इसी मुद्दे को प्रमुख मुद्दा बनाया। आज भी, बस्तर में यह समस्या जहां विपक्षी पार्टियों के हाथ में एक बड़ा हथियार बनी हुई है, वहीं सत्ताधारी पार्टी के स्थानीय नेताओं के लिए गले की हड्डी बनी हुई है। इनके बीच का झगड़ा चाहे जो भी हो, इस नई नीति से किसानों को कई दिक्कतें झेलनी पड़ रही हैं।

1. अपने खजाने के दिवालिया निकालने के कारण मध्यप्रदेश सरकार वन-धन समितियों को पर्याप्त धन आवंटित करने में असमर्थ है जिससे किसानों से माल की खरीदी नहीं कर पा रही है।
2. पूरे बस्तर में सिर्फ 100 साप्ताहिक बाजारों तक ही ये समितियां सीमित हैं जिससे दूरी के कारण हाट-बाजार नहीं जा सकने वाले आदिवासी अपना माल नहीं बेच पा रहे हैं।
3. धन की कमी के कारण बाजारों में किसानों के माल समितियां नहीं खरीद पा रही हैं जिससे किसान दूसरों को भी नहीं बेच सक रहे हैं। बाजार से रोजमर्रा की जरूरती चीजें नहीं खरीद पा रहे हैं।
4. समितियों द्वारा खरीदी होने की उम्मीद से लंबी-लंबी कतारों में दिन भर बैठने वाले किसानों को आखिर में जब समिति के कर्मचारी पैसों के अभाव की खबर सुनाते हैं, तो निराशा में छटपटाते हुए रह जाते हैं। इस स्थित में वे नून-तेल का इंतेजाम भी नहीं कर पा रहे हैं।
5. सैकड़ों फुटकर व्यापारियों की जिंदगी बरबाद हो गई।

उक्त दुष्परिणामों की वजह से किसान वन-धन समितियों का विरोध कर रहे हैं। ऐसे माहौल में डीएकेएमएस ने किसानों के समर्थन में संघर्ष का नारा दिया। वन-धन समितियों की दिवालिया नीति का विरोध करते हुए उत्तर और दक्षिण बस्तर में नीचे की इन मांगों से प्रचार किया गया।

1. वनोपजों के संग्राहक (मालिक) जो मूल्य घोषित करते हैं, उसी मूल्य से वन-धन समितियों को उनका माल खरीदना चाहिए।
2. खरीदी का पूरा अधिकार समितियों को देते हुए सरकार द्वारा लिए गए फैसले को वापस लिया जाए।
3. किसानों को अपना माल सिर्फ समितियों को बेचने पर मजबूर करने वाली सरकार की नीति को वापस लिया जाए। हाट बाजारों में पहले की तरह निजी व्यापार को भी इजाजत दी जाए।

उपरोक्त मांगों से जन संगठनों ने व्यापक प्रचार किया। पोस्टर लगा दिए। बाजारों में रैलियां निकाली गईं। फुटकर व्यापारियों को गोलबंद करके समितियों के खिलाफ आन्दोलन तेज किया गया।

इसके तहत 15-12-1999 को वयानार बाजार में 30 गांवों के किसानों और फुटकर व्यापारियों - कुल 6,000 लोगों ने रैली निकाली। डौला में 14 गांवों के करीब 100 किसानों ने रैली निकाली। समितियों के अधिकारियों को मांगपत्र सौंपकर 10 दिन की मोहलत दी गई और फिर 25-12-1999 को आमसभा बुलाई गई जिसमें 1,800 किसानों ने भाग लिया।

आमसभा को संबोधित करने वाले वक्ताओं ने उपरोक्त मांगों के अलावा सरकार की साजिशों का पर्दाफाश किया।

वनोपजों को निजी व्यापारी जो दाम देते हैं, उससे ज्यादा दाम घोषित करके समिति आदिवासियों का हितैषी होने का ढोंग कर रही है। लेकिन, एक तो वह खरीदी ठीक-ठाक नहीं कर रही है और दूसरा, अधिकारी घोषित दाम भी नहीं दे रहे हैं। आज निजी व्यापारियों को इस व्यवसाय से अलग-थलग करने वाली सरकार अपनी वैश्वीकरण, निजीकरण और उदारीकरण की नीतियों के तहत षड़यंत्रकारी तरीके से नियमितीकरण कर रही है ताकि 1,000 करोड़ रु. के इस भारी व्यापार को बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को सौंप दिया जा सके। सभी जनता ने संकल्प लिया कि इस तरह की व्यापार की नीतियों का विरोध किया जाए तथा बस्तर की धरती पर बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को कदम रखने से रोका जाए।

अधूरी स्कूलें - नदारद शिक्षक

अपनी समस्याओं को लोकर स्कूली बच्चों का संघर्ष

दण्डकारण्य में संघर्ष वाले इलाकों में अत्यधिक आबादी आदिवासियों की है। उड़ीसा के कलिमेला इलाके से बालाघाट के परसवाड़ा इलाके तक, आज संघर्ष की जरूरतों के तहत दण्डकारण्य के नाम से बुलाए जाने वाले इस विशाल प्रांत में जीने वाले तमाम आदिवासियों की जिंदगी करीब-करीब एक जैसी है। इस विशाल इलाके में जीने वाले आदिवासियों की मातृभाषा `गोण्डी' ही है, भले ही समय के साथ-साथ उसमें कई बदलाव क्यों न आएं। मानवजाति के इतिहास में गोंडवाना के नाम से सुविख्यात विशालतम इलाके के अंतर्गत आने वाले इस क्षेत्र में जी रहे लाखों गोंडों को पढ़ने-लिखने के लिए पर्याप्त अवसर नहीं हैं। पिछले 100 सालों से आदिवासी क्षेत्रों में शिक्षा और सामाजिक विकास पर कोई काम नहीं हुआ बताया जा सकता है। ब्रितानी दस्तावेज़ों के मुताबिक 1891 तक बस्तर में 19 स्कूलें थीं जिनमें 584 छात्र पढ़ रहे थे। 1908 तक स्कूलों की संख्या 58 तक बढ़ी थी और छात्रों की संख्या 3855 तक बढ़ी थी। उसी जमाने में अंग्रेजी पुलिस वाले 27 थे और विशेष आरक्षित बल 297 का था। आज, 100 साल के बाद भी, इस स्थिति में आमूलचूल बदलाव लाने को शासक वर्गों ने कोई प्रयास नहीं किया। आज भी विशाल बस्तर में साक्षरता दर 20 प्रतिशत से नहीं बढ़ी। इन साक्षरों में भी दूर-दराज के ग्रामीणों के मुकाबले शहरी और कस्बाई लोग ही ज्यादा हैं। बस्तर की शिक्षा व्यवस्था में सरकार की नाकामियों को समझने के लिए सिर्फ भैरमगढ़ छापामार दस्ता इलाके पर नजर डालना काफी होगा। यह दस्ता 150 गांवों के दायरे क्रान्तिकारी गतिविधियों का संचालन कर रहा है, उनमें से 100 गांवों में कोई स्कूल नहीं है। कवाडि, एडसुम, इरमागोण्डा, इरील, आवुनार, नेन्ड्रा, कोरसेल आदि गांवों में डेढ़ साल से गुरूजी नदारत हैं। इन गांवों की स्कूलें मवेशीखानों और सुअरबाड़ों में तब्दील हो गईं। कई गांवों में घासफूस से बनाई स्कूलों की यही हालत है। भैरमगढ़ विकासखण्ड के कुल 281 गांवों में 60,449 लोग रहते हैं। हालांकि उनके लिए सरकार ने 107 स्कूलें शुरू कीं, लेकिन उनमें से 67 ही ऐसी हैं जिनके पक्का भवन नहीं हैं। इससे यह समझा जा सकता है कि लोगों की शिक्षा पर सरकार को कितना ध्यान है। लेकिन यह थोड़ा-बहुत ध्यान भी सरकार इसलिए दे रही है क्योंकि पिछले 20 सालों से क्रान्तिकारी आन्दोलन जारी है।

`हम लंगोटिए आदिवासी नहीं हैं - आदिवासियों की जिन्दगी में काफी बदलाव आ चुका है' कहकर शेखी बघारने वाले बस्तर के विधायक, सांसद, पंच-सरपंच जैसे नेताओं ने आज तक शिक्षा व्यवस्था में व्याप्त बदहाली को लेकर जन आन्दोलन नहीं छेड़ा। इन प्रांतों से चुनकर संसद और विधानसभाओं में प्रवेश पाने वालों को इसकी कोई चिंता भी नहीं है। लेकिन, लंबे समय से क्रान्तिकारी जन संगठनों में एकजुट होकर जागरूक बन रहे किसानों ने अपनी संतानों की पढ़ाई-लिखाई की समस्या पर भी आन्दोलन छेड़ दिया। उत्तर बस्तर और दक्षिण बस्तर में क्रान्तिकारी बाल संगठनों में संगठित हो रहे नन्हे बच्चे अपने अभिभावकों के साथ नारे लगाते हुए सड़कों पर आए।

दक्षिण बस्तर डिवीजनल कमेटी ने अपनी जुलाई 1999 की बैठक में सरकारी स्कूलों की बदहाली की समीक्षा की। आन्ध्रप्रदेश के मुख्यमन्त्री की तर्ज पर प्रचार को ज्यादा महत्व देते हुए, भोलीभाली जनता से छलावा कर रहे दिग्विजय सिंह की नीतियों का बैठक ने खण्डन किया। छात्रों और अभिभावकों को गोलबन्द करके रैलियां आयोजित करने का फैसला लिया गया। बैठक ने डीएकेएमएस के कार्यकर्ताओं से इस आन्दोलन का समर्थन करने का आग्रह किया। डीएकेएमएस की रेन्ज कमेटियों की अगुवाई में छात्रों और अभिभावकों ने सड़क किनारे के गांवों में जहां स्कूलें मौजूद हैं, रैलियां निकालीं। कोंटा, बासागूडेम, भैरमगढ़, नेशनल पार्क, मद्देड, कोण्डागांव और केशकाल दस्तों की एरिया कमेटियों ने एक महीने तक इस कार्यक्रम पर जोर देकर शिक्षा व्यवस्था की खामियों का पर्दाफाश किया। इस मौके पर कुछ मुख्य समस्याएं सामने आईं। पार्टी कमेटियों ने जनता को समझाया कि ये समस्याएं एक दिन में हल नहीं होंगी, इन पर लगातार लड़ना होगा।

1. शिक्षा गारन्टी योजना के मुताबिक 1 कि.मी. के दायरे में 25 बच्चों के लिए कहीं भी पक्की स्कूल नहीं बनाने वाली सरकार के झूठे प्रचार का लोगों में पर्दाफाश करना चाहिए।
2. जहां कहीं भी पक्की स्कूलें हैं, उन्हें पुलिस के अड्डे नहीं बनने दिया जाए।
3. स्कूलों में काम करने वाले शिक्षकों को सरकार पर्याप्त सुविधाएं उपलब्ध कराए। शिक्षकों को अपनी जिम्मेदारी गंभीरता से निभानी चाहिए।
4. स्कूलों को मवेशीखानों और सुअरबाड़ों में तब्दील होने से रोकने के लिए चारों तरफ बाड़ लगाई जाए।
5. शिक्षकों पर पुलिसिया जुल्मों को बंद करो - सरकार स्कूलों को शिक्षा के उपकरण उपलब्ध कराए।
6. स्कूलों में बच्चों के लिए कपड़े, कॉपियां, खेल-कूद का

मैदान, शौचालय आदि का इंतजाम करना चाहिए।

7. अत्याचारों और भष्टाचार के केन्द्र बने छात्रावासों को सही तरीके से सुधारकर सभी सुविधाएं उपलब्ध कराई जाएं।

उक्त मांगों से डिवीजनल कमेटी ने एक पर्चा जाहिर किया जिसमें शिक्षकों से कहा गया कि वे जरूर काम की जगह पर उपस्थित रहें तथा उन्हें जनता से पूरा सहयोग मिलेगा। इन मांगों पर नन्हे-मुन्ने बच्चों ने भारी वर्षा और नदी नालों की परवाह न करते हुए मीलों दूर चलकर अधिकारियों को मांगपत्र दिए। लेकिन खाकी बलों ने इन बच्चों को भी नहीं बख्शा। पुलिस ने यह निष्कर्ष निकाल रखा है कि दण्डकारण्य में जनता की समस्याओं पर चाहे कोई भी आवाज उठाए वह नक्सलवादी या उनका समर्थक ही हो सकता है। बासागूडेम के निकट इलिंगेर में पुलिस ने छात्रों को जबरन घर वापस भेज दिया। 4 अगस्त 1999 को भैरमगढ़ में आयोजित रैली में 40 गांवों से 3,000 लोगों ने भाग लिया। छात्रों की समस्या पर उनके माता-पिताओं द्वारा इतनी बड़ी रैली का आयोजन भैरमगढ़ के इतिहास में अभूतपूर्व था। हालांकि बीजापुर जाने के लिए 7 गांवों से 650 लोग इकट्ठे हुए, पर प्रकृति के असहयोग के चलते वे बीजापुर नहीं पहुंच सके। इसके बावजूद, उन्होंने सरकार की `पढ़ना-बढ़ना', `शिक्षा गारंटी योजना' जैसी योजनाओं के खोखलेपन को अच्छी तरह समझ लिया। नारायणपुर और अंतागढ़ में 230 नन्हे-मुन्ने स्कूली बच्चों और उनके माता-पिताओं ने रैली निकालकर अधिकारियों से अपनी समस्याओं पर चर्चा की।

उक्त तमाम रैलियों में जनता ने बीजापुर कन्याश्रम में अगस्त 1999 में एक नाबालिग लड़की के साथ छात्रावास के अधीक्षक राजाराम त्रिपाठी और लालराम लहारे द्वारा किए गए बलात्कार के खिलाफ नारेबाजी की।

एक ओर सरकार की शिक्षा नीति का पर्दाफाश करते हुए ही, गांव-गांव में ग्राम राज्य कमेटियों का निर्माण करके, उनकी अगुवाई में गांव के सभी बच्चों को पढ़ने-लिखने का माहौल बनाना चाहिए। क्योंकि लुटेरे शासक वर्ग उत्पीड़ित जनता को शिक्षित बनाने का कोई कारगर प्रयास नहीं करेंगे। वैज्ञानिक शिक्षा प्रणाली सहित, शिक्षा के क्षेत्र में आमूलचूल बदलावों का विषय क्रान्ति की जीत जुड़ा हुआ हा। इसलिए गांव-गांव में इस दिशा में कदम बढ़ाने का संकल्प लेते हुए, खासतौर पर पिछले तीन सालों में क्रान्तिकारी जन संगठनों द्वारा किए गए प्रयासों से प्रेरणा ली जा रही है।

नन्हे स्कूली बच्चों ने गुरूजी को कैद किया

माड़ क्षेत्र में आमतौर पर किसी भी गांव में गुरूजी नहीं रहता है। वे विकासखण्ड मुख्यालय या तहसील मुख्यालय में रहकर बाकायदा हर महीने का वेतन ले लिया करते हैं। दूर-दराज के गांवों में जाने से बचने के लिए वे अपने अधिकारियों के सामने नक्सलवादियों से `खतरा' होने का झूठा बयान देते हैं। दरअसल कामचोर और अन्य धंधों में मजा लेने वाले शिक्षक ही अधिकारियों से झूठी शिकायतें करके, उनकी सांठगांठ से जनता के धन का दुरुपयोग करते हैं। सच कहा जाए, तो अपनी ड्यूटी सही ढंग से करने वालों को छापामारों से डरने की कोई जरूरत ही नहीं है, बल्कि उन्हें पूरी सुरक्षा दी जाएगी। जनता भी ऐसे कर्मचारियों को सहयोग देती है। इसके अलावा, यदि वे बीमार पढ़ते हैं, तो उन्हें जन चिकित्सा-केन्द्रों से दवाइयां भी दी जाती हैं जिनका संचालन जनता की नई राजसत्ता के अंग कर रहे हैं।

सरकार भी यह बात जानती है कि माड़ के पहाड़ों में नौकरी कर रहे कई कर्मचारी मुफ्त में वेतन ले रहे हैं। इसलिए सरकार ने इस पहाड़ी अंचल को ठेके पर रामकृष्ण मिशन के सुपुर्द कर दिया। यहां पर मिशन ही सड़कों का निर्माण कर रही है। वही कृषि विकास के नाम सुधार कार्यक्रम चला रही है। बेरोजगार युवाओं को सरकारी सुधार कार्यक्रम के तहत विभिन्न व्यवसायों में प्रशिक्षित कर रहा है। ये सब कार्यक्रम `एकलव्य' योजना के तहत चलाए जा रहे हैं। ये युवक पुलिस मुखबिरी भी कर रहे हैं। माड़ के पहाड़ों पर रामकृष्ण मिशन 5 आश्रमशालाएं और कई आंगनवाड़ी केन्द्र चला रही है। वन-धन समितियों के माध्यम से वनोपजों की खरीदी भी यह संस्था कर रही है। इस तरह, हर क्षेत्र में इनकी घुसपैठ हो रही है। विदेशी धन के अलावा सरकार भी इस संस्था की वित्तीय मदद कर रही है। इस तरह, हर क्षेत्र में इनकी घुसपैठ हो रही है। इस संस्था की स्कूलों में भी चंद्रवंशी जैसे भ्रष्ट शिक्षकों और यादव जैसे बलात्कारियों को छापामारों द्वारा आयोजित जन-अदालत में खुद को पेश करना पड़ा और नौकरी छोड़कर भागना पड़ा। मसपुर गांव की सरकारी स्कूल में कार्यरत शिक्षक नेताम भी इसी श्रेणी में गिना जा सकता है।

नारायणपुर से 42 कि.मी. दूर, गारपा जाने वाली सड़क पर मसपुर गांव स्थित है। मसपुर की स्कूल में तीन शिक्षक पदस्थ हैं। लेकिन यहां पर हमेंशा दो ही शिक्षक रहते हैं, जबकि एक नारायणपुर में ही रहते हुए वेतन लिया करता है। यहां रहने वाले दो शिक्षकों में नेताम एक है जो हमेशा शराब के नशे में धुत्त रहता है। इसकी शराब की लत से छात्र तंग आ चुके हैं। यह शराबी गुरूजी को नशे में यह खयाल भी नहीं रहता है कि उसके बदन पर कपड़े हैं भी या नहीं। एक दिन, इसी तरह शराब के नशे में कपड़े गंवा चुके नेताम को छात्रों ने स्कूल के एक कमरे में बंद करके ताला लगाया। उसे तब तक कमरे में रखा गया जब तक कि उसका नशा नहीं उतरा था। अगले दिन गांव के लोगों ने पंचायत बुलाकर नेताम को अपनी गलतियों को सुधारकर ढंग से पढ़ाने को कहते हुए सजा के तौर पर उससे 15 रु. का जुर्माना लिया।

बच्चों और ग्रामीणों द्वारा इस तरह शिक्षक को सबक सिखाना काबिले तारीफ है। यह कार्रवाई बाकी तमाम लापरवाह और कामचोर शिक्षकों के लिए एक सबक है जबकि बच्चों का यह साहसिक कदम और बड़े लोगों का सहयोग दूसरे गांवों के लोगों के लिए एक मिसाल है।

बांस और तेन्दुपत्ता सवालों पर जन संघर्ष

दण्डकारण्य में उड़ीसा के मलकानगिरी जिले के कलिमेला क्षेत्र में सरकार ने तेन्दुपत्ता संग्रहण करवाने का काम बन विभाग को सौंप दिया। मध्यप्रदेश के उत्तर बस्तर, दक्षिण बस्तर, माड़ एवं बालाघाट-भण्डारा डिवीजन के बालाघाट-राजनांदगांव क्षेत्रों में सरकार ने तेन्दुपत्ता संग्रहण करवाने का काम सहकारी संघों को सौंप दिया। उधर, महाराष्ट्र के गड़चिरोली डिवीजन और भण्डारा जिले में निजी व्यापारी ही तेन्दुपत्ता तुड़वा रहे हैं। इस तरह तीनों राज्यों में तेन्दुपत्ता अलग-अलग प्रकार से तुड़वाया जाता है। तीनों राज्यों की सरकारों ने लगभग एक ही मजदूरी दर घोषित की है, पर निजी ठेकेदार अपने मुनाफों को देखते हुए कुछ अधिक मजदूरी देते हुए तेन्दुपत्ता तुड़वा रहे हैं। उड़ीसा और मध्यप्रदेश की सरकारें अड़ियल रवैए अपनाकर, जन विरोधी नीतियों पर चलते हुए तेन्दुपत्ता संग्राहक मजदूरों को लूट रही हैं। मध्यप्रदेश सरकार तो मुनाफों को बोनस के रूप में बांटने का ढोंग करते हुए, पिछले 10 सालों से सहकारी संघों के मुखियाओं और सरकारी बाबुओं की जेबें भर रही है।

उड़ीसा और मध्यप्रदेश की सरकारों की तेन्दुपत्ता संग्रहण नीति का विरोध करते हुए डीएकेएमएस, केएएमएस सहित पार्टी ने साझे तौर पर अप्रैल 7 तारीख को बन्द का आह्वान किया। बंद के माध्यम से भी विरोध व्यक्त करने के बावजूद सरकार अनसुना करने लगी तो जनता ने सरकारी संपत्ति को ध्वस्त करना शुरू किया। इसके बावजूद सरकार के अड़ियल रुख में कोई बदलाव नहीं आया। सरकार ने इस वर्ष भी वह मजदूरी तय की जो पिछले दो सालों से देती आ रही थी। जनता की कम से कम 70 रु. प्रति सौ गड्डी की मांग को ठुकराकर सरकार ने इस साल भी 45 रु. की मजदूरी दी।

कुछ स्थानीय पूंजीवादी और संशोधनवादी पार्टियों ने भी तेन्दुपत्ता मजदूरी बढ़ाने की मांग उठाई। विशाल बस्तर जिले में कम से कम 15 लाख आदिवासी मजदूर तेन्दुपत्ता संग्रहण काम में लगे रहते हैं। सरकारी अधिकारी और सहकारी संघ इन सभी की मेहनत लूटते आ रहे हैं। इनकी लूट-खसोट का पर्दाफाश करते हुए डीएकेएमएस और केएएमएस ने बड़े पैमाने पर पोस्टरों और पर्चों से प्रचार किया।

जनता ने 50 पत्तों वाली प्रति गड्डी पर 70 पैसे देने, गांव-गांव में फड़ खोले जाने, तेन्दुपत्ता तुड़ाई काम कम से कम एक महीने तक चलाने, बकाया बोनस का तत्काल भुगतान करने आदि न्यूनतम मांगें उठाईं।

उत्तर बस्तर डिवीजन के गड़बेंगाल में ग्राम पंचायतों के अंतर्गत 34 गांवों से आए 7,000 लोगों ने तथा बोंदानार में 30 गांवों के 7.000 लोगों ने 7 अप्रैल को सुबह 10 बजे से दोपहर 2 बजे तक राज्य की मुख्य सड़क पर चक्काजाम किया। गड़बंगाल में पुलिस ने धमकी दी, पर लोगों पर उसका कोई असर नहीं पड़ा। जनता ने अपनी रैली सफलता से पूरी की। उसके बाद अधिकारियों को मांगपत्र सौंपकर लौट रही जनता पर हमला करके पुलिस ने 22 लोगों की गिरफ्तारी की। लेकिन लोगों ने विरोध करके तुरन्त ही उनकी रिहाई करवा ली। मर्दापाल में 40 गांवों के जन प्रतिनिधियों ने रेन्जर को अपनी मांगों से अवगत करवाते हुए पर्चा दिया। 6 अप्रैल 2000 को कोइलीबेड़ा इलाके के ग्राम संगम में 106 लोगों ने वन विभाग के रेन्जर का दफ्तर जला दिया।

इस प्रकार, मध्यप्रदेश के तीनों डिवीजनों में जनता ने अपने ढंग से सरकार के खिलाफ आवाज उठाई। दूसरी ओर, मध्यप्रदेश-महाराष्ट्र की सीमा पर वन विभाग के अधिकारियों ने निजी ठेकेदारों से सांठगांठ करके कई ट्रकों का तेन्दुपत्ता चोरी-छिपे बेचकर, उलटा यह प्रचार किया कि नक्सलवादियों ने तेन्दुपत्ता जला डाला। जनता ने भ्रष्ट अधिकारियों के काले कारनामों का पर्दाफाश किया। उड़ीसा में कलिमेला छापामार दस्ते ने विकासखण्ड अधिकारी का दफ्तर उड़ा दिया। दक्षिण बस्तर के बासागूडेम इलाके में 6 प्रचार दलों के 60 स्त्री-पुरुषों ने सरकार की तेन्दुपत्ता नीति के खिलाफ प्रचार किया।

दूसरी ओर, महाराष्ट्र में सरकार की घोषित मजदूरी से ज्यादा, रु. 1-50 प्रति 70 पत्तों की गड्डी मजदूरी निजी ठेकेदारों ने दी। लेकिन जनता की मांग पर अमल करने से अपनी साख गिर जाने के डर से, कुंठित पुलिस वालों ने ठेकेदारों पर रु. 1-60 की मजदूरी देने के लिए जोर डाला। भामरागढ़ और गट्टा रेंज के कुछ गांवों में कुछ दिनों तक इस दर पर अमल करवाया। गड़चिरोली और भण्डारा जिलों की जनता लगातार कई सालों से तेन्दुपत्ता मजदूरी संघर्ष में सफलता अर्जित करते आ रही है। तेन्दुपत्ता संघर्ष में दृढ़ता से डटे रहने वाली क्रान्तिकारी जनता को पार्टी और जन संगठनों ने क्रान्तिकारी बधाई दी।

बालाघाट डिवीजन में अक्टूबर 1999 में बांस कटाई का काम शुरू हुआ है। समूचे दण्डकारण्य में आमतौर पर बांस कटाई का काम इसी सीजन में शुरू होता है। गड़चिरोली और भण्डारा जिलों में भारत के बड़े पूंजीपति थापर की कंपनी औद्योगिक बांस कटवाती है, और मध्यप्रदेश में सरकार खुद ही वन विभाग द्वारा बांस कटाई करवाती है। उड़ीसा के मलकानगिरी के जंगलों में भी थापर की कंपनी ही बांस कटवाती है। जहां-जहां सरकार बांस कटाई का काम करवा रही है, वहां मजदूरों की भारी लूट-खसोट हो रही है। भ्रष्ट अधिकारी भुगतान के मौके पर लोगों को मनमाने लूटते हैं। इनकी लूट का विरोध करते हुए मध्यप्रदेश के बालाघाट डिवीजन में श्रमिक सड़कों पर उतर आए। अक्टूबर 1999 से 10 नवंबर तक 40 दिन हड़ताल चलने से बांस कूपों में कामकाज ठप्प हो गया। इससे सरकार को मजदूरी दर में थोड़ी-बहुत बढ़ोत्तरी करने पर मजबूर होना पड़ा।

मध्यप्रदेश के बालाघाट डिवीजन में वर्ष 2000 के लिए दी गई मजदूरी

मीटर		रु - पै
9	प्रति सैकड़ा	120-00
7	"	108-30
6-50	"	95-40
3-75	"	66-23
2-00	प्रति 20 टुकड़ों का बंडल	4-70
1-00	"	2-75

अन्य हासिल मांगें :

* 7 मीटर से ज्यादा या कम लंबाई के बांस नहीं कटवाए जाएं। छांटने का काम रोका जाए।
* दैनिक मजदूरी रु. 60-77 हासिल की गई।

थापर के खिलाफ लड़कर गड़चिरोली एवं भण्डारा के श्रमिकों द्वारा हासिल की गई मजदूरी

काम	मांग रु - पै	हासिल मजदूरी रु - पै
बांस कटाई एवं ढुलाई	6.70	6.60
पुनः बंधाई	38.00	38.00
दैनिक मजदूरी	50.00	40.00
ट्रक पर लोडिंग एवं अनलोडिंग	50.00	50.00
छोटा मेट (दैनिक मजदूरी)	48.00	48.00
बड़ा मेट (दैनिक मजदूरी)	50.00	50.00

अन्य मांगे :

* 5.40 रु. के रियायती दाम पर मजदूरों को चावल उपलब्ध होगा।
* काम की जगह पर जान गंवाने से 70 हजार रु. का मुआवजा दिया जाएगा।

दण्डकारण्य में उपरोक्त मजदूरी से काम ठीक-ठाक चलने लगे थे, तो मप्र के बालाघाट डिवीजन में भ्रष्ट अधिकारियों ने बांस के कामों को बीच में ही रोक दिया। उन्होंने नक्सलवादी बांस कूपों को नहीं जलाने का वचन दें जैसी बे-सिरपैर की मांगें उठाई। जनता की मांगें पूरी करने के बाद भी काम रोकने वाले अधिकारियों की श्रमिक विरोधी नीति का विरोध करते हुए, पार्टी ने 10 दिसम्बर 1999 को बंद का आह्वान किया। बंद की सफलता से से डरकर अधिकारियों ने काम शुरू कर दिए।

अधिकारियों की गलत नीति का खण्डन करते हुए परसवाड़ा इलाके के तीन गांवों के 150 लोगों ने 7 जनवरी 2000 को हड़ताल शुरू की। हड़ताल तभी वापस ली गई जब सरकार ने अड़ियल रवैया त्याग दिया। क्रान्तिकारी आन्दोलन वाले इलाके में बढ़ रही जनता की चेतना पर पानी फेरने के लिए सरकार तरह-तरह की साजिशें रचती जा रही हैं, तो जनता के संघर्षों से यह साबित होता जा रहा है कि संघर्षशील जनता को कोई भी ताकत नहीं रोक सकती।

"अमरीकी गैतल हाईर - हाईर"
बिल क्लिंटन के पुतले जले

मार्च 2000 में अमरीकी राष्ट्रपति, साम्राज्यवादियों का दलाल बिल क्लिन्टन के भारत दौरे का विरोध करते हुए स्पेशल जोनल कमेटी ने जनता से व्यापक विरोध संघर्ष छेड़ने का आह्वान किया। इस मौके पर स्पेशल जोनल कमेटी सदस्य, माड़ डिवीजन के सचिव कॉमरेड कोसा ने अखबार वालों को दी भेंटवार्ता में विकासशील देशों के प्रति अमरीका की नीतियों का भण्डाफोड़ किया। उन्होंने स्पष्ट किया कि अमरीकी साम्राज्यवाद का अंत नजदीक आ गया है, साम्राज्यवाद अभूतपूर्व संकट से गुजर रहा है तथा विश्व की जनता के संघर्ष के शोलों में उसका नामोनिशान मिट जाएगा। हमारे देश में भी सामंतवाद-साम्राज्यवाद विरोधी संघर्षों को तेज करने का कॉ. कोसा ने आह्वान किया। केन्द्र सरकार द्वारा अपनाई गई आर्थिक नीतियां जनता के लिए श्राप बन जाने एवं उनके खिलाफ हजारों लोगों के सड़कों पर उतर आने की बातें कहते हुए उन्होंने स्पष्ट किया कि दण्डकारण्य की संघर्षशील जनता उन तमाम लोगों के कंधे से कंधा मिलाते हुए चलेगी जो भारत सरकार की उन जन विरोधी नीतियों के अंत के लिए लड़ रहे हैं।

पार्टी के आह्वान पर पूरे दण्डकारण्य में सैकड़ों छापामारों ने गांवों में जनता की सभाओं का आयोजन करके साम्राज्यवाद का दलाल बिल क्लिंटन के दौरे का विरोध करते हुए दिग्विजय सिंह सरकार की दिवालिया नीतियों के नतीजों को उजागर किया। उत्तर बस्तर में ताड़ोकी, रावघाट और पल्लाकस्सा में पोस्टर छिपका दिया गया तथा रावघाट की मुख्य सड़क पर क्लिन्टन का पुतला जला डाला गया। तुड़को में 3 गांवों के 50 लोगों ने एक जुलूस निकालकर घासफूस से बनाए क्लिंटन के पुतले को जला दिया। "अमरीकी गैतल हाईर - हाईर" (अमरीकी प्रभु मुरदाबाद) कहकर गोण्डी में लोगों ने क्लिन्टन के खिलाफ नारेबाजी की। पल्लाहाड गांव में 2 गांवों के युवती-युवकों और बच्चों ने क्लिन्टन के पुतले को जलाने के बाद परम्परागत मौत का नृत्य किया।

छापामार इलाके में फ़ौजी कार्रवाइयां
बहादुर छापामार योद्धाओं को लाल-लाल सलाम!

पिछले एक साल के दौरान समूचे दण्डकारण्य में छापामारों को कई बार पुलिस की गोलीबारी का सामना करना पड़ा। जंगल में बड़े पैमाने पर खोजबीन करने वाले पुलिस बलों की सूचना पहले ही इकट्ठा करके छापामारों ने कई घात हमले भी किए। दुश्मन की स्थिति का पूरी तरह मुआयना करके, उसकी टोह लेकर

छापामारों ने शूरता का परिचय देते हुए सुनियोजित रेइडें भी कीं। ऐसी घटनाएं भी हुई हैं जिनमें पुलिस ने किसान युवकों का अपहरण करके मुठभेड़ का बहाना करके गोली मार दी। छापामारों का सुराग हासिल करने में नाकाम होने पर पुलिस द्वारा किसानों को जान से मारने की घटनाएं भी घटीं। पुलिस की फेंकी जूठन के लालच में छापमारों की गतिविधियों की सूचना इकट्ठी करके पुलिस को पहुंचाने वाले मुखबिरों एवं गोपनीय सैनिकों को मौत के घाट उतारने की घटनाएं भी घटीं।

नीचे दी गई तालिका में फौजी कार्रवाइयों का लेखा-जोखा दिया गया।

दण्डकारण्य छापामार इलाके में फौजी कार्रवाइयां (जून 1999 से जून 2000 के तक)

छापामारों द्वारा किए गए हमले

डिवीजन	हमला	पुलिस को हुए नुकसान	छापामारों को हुए नुकसान	छीने गए हथियार
उत्तर बस्तर	बजरंगबलि घात हमला	-	-	-
दक्षिण बस्तर	कोंगपल्लि घात हमला	-	-	-
गड़चिरोली	अडिंगे घात हमला	1 मरा	-	-
"	असरेल्लि रेइड (उत्तर तेलंगाना के छापामारों द्वारा)	2 घायल	2 शहीद	32
माड़	वाकुलबाही घात हमला	24 मरे	-	13
"	एड़सागढ़ घात हमला	1 मरा 5 घायल	-	-
बालाघाट-भण्डारा	सेरवी घात हमला	2 मरे, 1 घायल	-	2
"	छुरिया रेइड	3 घायल	1 शहीद	-
कुल	**9**	**28 मरे 11 घायल**	**3 शहीद**	**47**

पुलिस से हुई मुठभेड़ें, झूठी मुठभेड़ें और छापामारों के हाथों मारे गए जन दुश्मन

डिवीजन	मुठभेड़	छापमारों को हुए नुकसान	झूठी मुठभेड़ों में मारे गए किसान	छापामारों द्वारा खत्म किए गए जन दुश्मन
उत्तर बस्तर	2	-		10 मुखबिर गलती से एक निर्दोष की मृत्यु
दक्षिण बस्तर	2	-	पूर्व नक्सली कॉ. भीमन्ना	2 होमगॉर्ड 1 पुलिस 2 मुखबिर
गड़चिरोली	2	5 शहीद (2 उत्तर तेलंगाना के)	-	8 मुखबिर
माड़	4	4 शहीद 1 किसान शहीद 1 छापामार घायल	बेकसूर किसान कॉ. राजू	4 मुखबिर 1 होमगॉर्ड 11 गोपनीय सैनिक
बालाघाट-भण्डारा	5	-	-	14 मुखबिर 1 मंत्री (लिखीराम कावरे)
कुल	**15**	**10 शहीद-1 घायल**	**2**	**55**

* इसके अलावा उत्तर बस्तर डिवीजन में एक मुखबिर के घर पर 6 गांवों के 82 लोगों ने हमला करके करीब 10,000 रुपए कीमत की संपत्ति जब्त की, जिसमें 2 बैल, 2 भैंसा, 8 खंडी धान, एक खंडी मंड़िया आदि शामिल हैं।

8 मार्च – अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस संघर्ष-सप्ताह के रूप में मना

दण्डकारण्य में हर साल 8 मार्च को मनाया जाने वाला महिला दिवस ज्यादा महत्वपूर्ण बनता जा रहा है। हर वर्ष 8 मार्च को `संघर्ष दिवस' के रूप में मनाने वाली उत्तर बस्तर और माड़ डिवीजनों की महिलाओं ने इस वर्ष, केएएमएस के आह्वान पर 8 मार्च से 15 मार्च तक `संघर्ष-सप्ताह' मनाया। महिलाओं पर दिनोंदिन बढ़ रहे पुलिसिया अत्याचारों के विरोध में, महिलाओं पर राजकीय हिंसा का विरोध करते हुए बड़ी सभाएं आयोजित की गईं। सैकड़ों गांवों की हजारों महिलाओं ने सभाओं में भाग लेकर राजकीय हिंसा का खण्डन करते हुए अपने अनुभव की समीक्षा की। कुछ स्थानों पर संगठन के प्रस्तावित कार्यक्रमों की रूपरेखा भी तैयार की गई। माड़ डिवीजन के परालकोट दस्ता इलाके के ग्राम गारपा में आयोजित सभा में 5 गांवों की 100 महिलाओं ने भाग लिया। मूसेर गांव में छह गांवों की 150 महिलाओं, कोंगल में 10 गांवों के 100 स्त्री-पुरुषों तथा मक्कोडी में 7 गांवों की 50 महिलाओं, गमिडी में 3 गांवों की 120 एवं मेट्टानार में 50 महिलाओं ने सभाओं में भाग लिया। इंद्रावती दस्ता इलाके के गांव पोदाड में आयोजित सभा में 500 लोगों ने भाग लिया जिनमें 65 पुरुष थे। इन सभी सभाओं में सफेद तारा चिन्हित लाल झण्डा फहराया गया और महिलाओं के नारों से दिशाएं गूंज उठीं। इस `संघर्ष-सप्ताह' के दौरान माड़ के पहाड़ों में `संघर्ष' का नारा ही प्रमुख था।

दक्षिण बस्तर में अन्नारम, सेन्ड्रा गांवों में महिलाओं की सभाएं हुईं। 200 महिलाओं ने इन सभाओं में भाग लिया। मद्देड क्षेत्र के आवुपल्ली में 350 तथा भद्रुगूडेम में 100 लोगों ने सभाओं में भाग लिया। जेगुरुगोण्डा इलाके में 4 प्रचार दलों ने अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस का महत्व गांवों में ले जाते हुए 1,200 लोगों से सभाएं लीं। कोंटा इलाके के किष्टारम इलाके में 800 लोगों से 8 मार्च मनाया गया। (बाकी इलाकों से रिपोर्टें नहीं मिलीं)।

किसानों की पीठ पर पत्थर लादकर मध्ययुगीन बर्बरता को भुलावा दे रही दिग्विजय सिंह सरकार

1999 में वर्ष 1999-2000 के बजट को पेश करने के बाद सरकार ने आर्थिक बदहाली को स्पष्ट करते हुए श्वेतपत्र पेश किया था, जिसके साथ ही कर्जों की वसूली कार्यक्रम ने जोर पकड़ा। नई वित्तीय नीतियों को सिर पर उठाकर दिवालिया हो रही सरकार किसानों पर भारी बोझ लाद रही है। ग्राम पंचायत के चुनाव को ध्यान में रखकर अधिकारियों ने वोट नहीं मिल सकने के डर से कर्जा वसूली थोड़े दिनों तक रोक दी। बैंक अधिकारियों ने बालाघाट जिले के गरीब किसानों के घरों में घुसकर कुर्की-जब्ती की। इसके खिलाफ किसानों को जागृत करने के लिए पर्चे बांटे गए। दक्षिण बस्तर जिले के कई पुलिस थाने कर्जा वसूली के केन्द्र बन चुके थे। जहां एक ओर सरकार ने वनोपजों की खरीदी कम कर दी, वहीं तेन्दुपत्ता के कामों को रोककर किसानों से जबरन कर्जा वसूली करने लगी है। इसके लिए पुलिस को भी तैनात किया गया है। जिले की सभी संसदीय राजनीतिक पार्टियों ने इस पर चुप्पी साधी रखी है, किसानों की बदहाली पर एक भी शब्द नहीं कहा। किसानों को किसी बहाने थानों में बुलाकर उनके अधनंगे और दुबले-पतले जिस्मों को झुकवाकर पीठ पर पत्थर रख दिए। इससे किसान असह्य पीड़ा से कराहने लगे तो अधिकारी तमाशा देखते रहे। इस मध्ययुगीन बर्बरता की कड़ी भर्त्सना करते हुए, क्रान्तिकारी जन संगठनों ने जनता का पक्ष लेते हुए सरकार से मांग की कि कर्जा वसूली को बंद करो। उन्होंने चेतावनी भी दी कि यह बंद नहीं होगी तो होने वाले नतीजों को भुगतने तैयार रहें।

अधिवेशन

दण्डकारण्य में मौजूद जन संगठनों के संगठनात्मक सम्मेलन हर दो साल में एक बार होते रहते हैं। इसके तहत इस वर्ष भण्डारा-बालाघाट डिवीजन में डाबरी रेन्ज में डीएकेएमएस का रेन्ज अधिवेशन 22 जनवरी 2000 को संपन्न हुआ। उत्तर बस्तर डिवीजन में प्रतापपुर रेन्ज को इस वर्ष दो हिस्सों में बांटा गया क्योंकि वह बड़ा रेन्ज था और जन संगठनों के बीच ताल-मेल संबंधी असुविधा हो रही थी। 18 मार्च 2000 को प्रतापपुर रेन्ज का अधिवेशन आयोजित किया गया और 5 सदस्यीय रेन्ज कमेटी चुन ली गई। कोय्यूर शहीदों के कॅम्यून में आयोजित इस अधिवेशन में 22 प्रतिनिधियों ने हिस्सा लिया।

अधिवेशनों में घोषणापत्र-नियमावली पर बहस करके उसका अनुमोदन किया गया। सभी अधिवेशनों में सचिवों ने दो साल की गतिविधियों का लेखा-जोखा पेश किया। बदलते राजनीतिक हालात का जायजा लेकर लिखे गए राजनीतिक प्रस्ताव पर भी बहस की गई। दो दिन चले इन अधिवेशनों में दूसरे दिन के आखिरी सत्र में कमेटी सदस्यों ने आत्मालोचना पेश की और प्रतिनिधियों से आलोचना मांगी। उसके बाद नई कमेटियों का चुनाव हुआ। अधिवेशन के दोनों दिन शाम के समय स्थानीय लोक-नृत्यों और क्रान्तिकारी गीतों ने अधिवेशन में उत्साह का संचार किया। दक्षिण बस्तर डिवीजन में ग्राम स्तर पर केएएमएस के सम्मेलन शुरू हो गए। नेशनल पार्क इलाके में 6 और भैरमगढ़ इलाके में 5 ऐसे सम्मेलन संपन्न हुए।

जनतांत्रिक चुनाव–ग्राम राज्य कमेटियों का चुनाव

ग्राम राज्य कमेटी की नियमावली के मुताबिक, हर दो सालों में एक बार उसका चुनाव ग्रामसभा द्वारा किया जाता है। इस तरह, जिन-जिन ग्राम राज्य कमेटियों की समयसीमा समाप्त हुई है, उनका चुनाव होना शुरू हो गया। ग्राम राज्य कमेटी के फैसले पर, अध्यक्षों ने ग्रामसभा बुलाकर दो साल की अवधि में किए गए कार्यक्रमों का लेखाजोखा पेश किया। इस दौरान हुई गलतियों का जायजा लेकर, उनमें जिन-जिन के लिए वे जिम्मेदार हैं, उनके लिए आत्मालोचना कर ली। साथ ही, ग्रामसभा के सदस्यगण से

आलोचना मांगी गई। उसके बाद ग्रामसभाओं में नई कमेटियों का चुनाव किया गया। नई सदी के शुरूआती दिन से ही दक्षिण बस्तर डिवीजन में इन चुनावों की शुरूआत हुई। जहां एक ओर सरकार ने ग्राम पंचायत के चुनाव की घोषणा करके गांव-गांव में पंच-सरपंचों को चुनने की प्रक्रिया शुरू की, वहीं दूसरी ओर, जनता ने क्रान्तिकारी चेतना से कहीं-कहीं निर्मित ग्राम राज्य कमेटियों का नया चुनाव करके नई कमेटियों को चुना। ऐसे गांवों में ग्राम पंचायत के चुनाव का संपूर्ण बहिष्कार किया गया। जनता के प्रति जवाबदेही से जनता के सामने नम्रता से पेश आने वाले जन-नेताओं को देखना जनता के लिए पहला अनुभव था, इसलिए लोगों ने इस प्रक्रिया में तन-नम से भाग लिया। जन-नेताओं की गलतियों पर जनता ने छापामारों की मौजूदगी में बिना किसी हिचकिचाहट के बेबाक आलोचना की। जहां कहीं भी नेताओं की आत्मालोचना से संतुष्ट नहीं हुए, वहां पर उनके बजाए नए नेताओं का चुनाव किया। इस तरह असली जनतांत्रिक शासन की नींव पक्की कर दी जाएगी।

जन-चिकित्सकों द्वारा जनता का इलाज

दण्डकारण्य के सभी डिवीजनों में जन स्वास्थ्य केन्द्रों का गठन हो गया और काम कर रहे हैं। हालांकि इनकी संख्या अब कम है, लेकिन इनका असर इतना ज्यादा है कि और भी नए-नए केन्द्र खोले जा रहे हैं। मलेरिया, आंत्रशोथ, घाव-दर्द जैसी मामूली बीमारियों के लिए इन केन्द्रों से जनता पैसे देकर दवाइयां ले रही है। ये किसान-डॉक्टर इन पैसों से फिर से दवाइयां खरीदकर केन्द्रों में रख रहे हैं। मुख्य रूप से बरसात के मौसम में बढ़ने वाली इन छूत की बीमारियों से जनता को छुटकारा दिलाने के लिए ये केन्द्र प्रयासरत है। इससे लोगों के खेती के काम में सक्रिय भाग लेने का मौका मिल रहा है जो उनकी जीविका का प्रमुख जरिया है।

चिकित्सा केन्द्रों के प्रयासों के अलावा, दण्डकारण्य में कुछ डॉक्टर जनता के हित में क्रान्तिकारियों के सहयोग से स्वच्छंदता से स्वास्थ्य-शिविरों का संचालन कर रहे हैं। दूसरी ओर क्रान्तिकारी आन्दोलन से जुड़े डॉक्टर भी स्थानीय किसान-डॉक्टरों के सहयोग से स्वास्थ्य-शिविर चला रहे हैं। पहले ये डॉक्टर `किसान-डॉक्टरों' को प्रशिक्षित करके उन्हें व्यावहारिक ज्ञान उपलब्ध करवा रहे हैं। दक्षिण बस्तर में जन-स्वास्थ्य केन्द्रों के डॉक्टरों के लिए फरवरी-मार्च महीनों में तीन दिनों का प्रशिक्षण-शिविर चलाया गया। उसी समय कोंटा में दो, भैरमगढ़ में दो, बासागूडेम में दो, कलिमेला में एक स्थान पर चिकित्सा-शिविर चलाए गए जिनमें कुल मिलाकर 2060 मरीजों का इलाज किया गया। जो दवाइयां उपलब्ध नहीं थीं, उन्हें लिखकर दिया गया। इलाज और स्वास्थ्य के मामलों में हो रहे प्रयासों से लोगों को यह स्पष्ट हो रहा है कि लुटेरी सरकार जनता के स्वास्थ्य पर कभी क्रान्तिकारी आन्दोलन से ही सभी समस्याओं का समाधान किया जा सकता है।

जमीन के नाप-तौल

क्रान्तिकारी आन्दोलन में एक और आगे कदम

दण्डकारण्य के उत्पीड़ित किसान जमीन के प्यासी हैं। लुटेरे शासक वर्गों ने काले कानूनों के सहारे जंगल पर आदिवासियों का प्रभुत्व समाप्त करके जमीन पर कब्जा कर रखा है। वे खुद तो कानून का उल्लंघन करते हुए जंगलों की अंधाधुंध कटाई कर रहे हैं, लेकिन किसानों को जमीन के लिए तड़पा रहे हैं। खेत जमीनों के अभाव से, भुखमरी का सामना करते हुए वनोपजों पर ही निर्भर रहने वाले लोग यदि जंगल काटते हैं, तो उनके खिलाफ सरकार कार्रवाई करती है। अभी तक जंगल विभाग का जुल्म बेरोकटोक चलता रहा। हालांकि किसानों ने जमीन से नाता कभी नहीं तोड़ा। यदि सरकार रहम करके पट्टे देती है, तो उनकी खेती चलती थी, वरना किसी नेता के पास जाकर पट्टों के लिए पैसे देते थे। ऐसी स्थिति में अब काफी बदलाव आ चुका है।

1) जंगल काटकर काश्त में लाई गई जमीनों पर काश्त करना आम हो गया।
2) ऐसा कोई किसान ही नहीं रह गया जिसे क्रान्तिकारी आन्दोलन के फलस्वरूप जमीन नहीं मिली हो।
3) बड़े पैमाने पर जंगल काटकर बेचने वालों पर रोक लगा दी गई।
4) सरकारी वन विभाग वालों के जुल्मों पर रोक लागा दी गई।
5) जंगल को काट-काटकर जमीनें बढ़ाकर जमींदार और मुखिया बनने वालों से गरीब किसान-मजदूर जमीनें छीनने लगे हैं।
6) किसानों ने सरकारी पट्टों के बिना ही खेती करना सीख लिया है।
7) पट्टे हासिल करने के लिए नेताओं के रहमोकरम पर निर्भर रहने की स्थिति खत्म हो गई।
8) गांवों की बंजर जमीनों पर ग्राम राज्य कमेटियों का कब्जा हो रहा है। जहां वे नहीं बनी हैं, वहां पर जन संगठन यह काम देख रहे हैं।
9) गांवों में जमीनों के ब्यौरे इकट्ठे किए जा रहे हैं। जमीनों का वितरण किया जा रहा है जिससे गरीब और भूमिहीन किसानों के साथ इंसाफ किया जा रहा है।
10) ग्राम राज्य कमेटियों या जन संगठनों की इजाजत के बिना नए सिरे से जंगल काटने पर पाबंदी लगा दी गई।

उपरोक्त बदलाव पूरे दण्डकारण्य के अलग-अलग गांवों में वहां के आन्दोलन की ताकत के अनुरूप हो रहे हैं। इस सिलसिले में क्रान्तिकारी आन्दोलन के अंतर्गत जमीन मालिकाना पर्चों का वितरण कार्यक्रम चल रहा है। हालांकि 1997 में पट्टों के नमूने बनाए गए थे, परन्तु उनके बंटवारे में कई दिक्कतें आई थीं। मुख्य रूप से जमीन के नाप-तौल के आंकड़ों के अभाव से दिक्कत आई थी। लेकिन जिस तरह नई सदी में कई नई प्रक्रियाओं की नींव डाली जा रही है, उसी तरह पट्टों का बंटवारा भी शुरू हो गया। ग्राम राज्य कमेटियां परिवार के पुरुष और स्त्री, दोनों को जमीन पर मालिकाना अधिकार प्रदान करते हुए पट्टे बांट रही हैं। इस वर्ष के जनवरी-मार्च महीनों के बीच दक्षिण बस्तर के 10 गांवों में जमीनों के ब्यौरे इकट्ठे करके मेड़ें तय करके, `क्रान्तिकारी जमीन पट्टों' का बंटवारा किया गया। इन पट्टों को हासिल कर चुके लोगों में विश्वास बढ़ चुका है और पट्टों की हिफाजत कर रहे हैं। जमीन के पट्टे पुलिस को नहीं मिल पाएं, तथा ग्राम राज्य कमेटियों का अता-पता दुश्मन को न मिले, इसके लिए किसान आवश्यक सावधानियां बरत रहे हैं।

कोटेनार शहीद हॉल में डीएकेएमएस का नेलनार रेन्ज अधिवेशन

कोटेनार गांव में नेलनार दस्ते के कॉमरेडों की शहादत का एक साल पूरा हो गया। जबसे पार्टी ने नेलनार दस्ते को दोबारा गठित किया है, तबसे वह पहला डीएकेएमएस अधिवेशन बताया जा सकता है। इसमें 10 गांवों से 20 प्रतिनिधियों ने भाग लिया और केएएमएस की 5 साथी-प्रतिनिधियों ने भी इस अधिवेशन में भाग लिया। अधिवेशन 1 से 3 जुलाई के बीच सम्पन्न हुआ।

प्रतिनिधियों के अलावा, सभी ग्रामवासियों ने भी इस सम्मेलन के उद्घाटन समारोह में भाग लिया जहां पर एक कॉमरेड ने डीएकेएमएस झण्डा फहरा दिया। उसके बाद सभी लोग जुलूस की शक्ल में अधिवेशन स्थल पर पहुंचे। प्रतिनिधियों की बैठक के पहले दिन घोषणा-पत्र, दूसरे दिन दमन-प्रतिरोध तथा तीसरे दिन पिछले एक साल के दौरान संघ की गतिविधियों का जायजा पर चर्चा हुई। इसके पहले भी रेन्ज कमेटी चुनी गई थी, लेकिन कुछ कारणों से उसे रद्द करना पड़ा था। इस अधिवेशन में राजनीतिक प्रस्ताव और 28 जुलाई के कार्यक्रम पर भी चर्चा करने के बाद पांच सदस्यीय कमेटी चुन ली गई।

अधिवेशन के प्रमुख प्रस्ताव :

1. `करसड़' (मेला) होने पर सभी गांवों के लोगों को अपने काम बंद नहीं करना चाहिए। जहां पर `मेला' होता है वहीं बंद रखा जा सकता है। साथ ही संघ जनता में यह प्रचार करेगा कि करसड़, शादी जैसे समारोहों को मार्च और अप्रैल महीनों में ही आयोजित करें क्योंकि तब सभी लोग खेती के कामों से मुक्त रहते हैं। जनता को काम के सीजन में समय बर्बाद नहीं करना चाहिए।
2. `करसड़' जाने पर लड़कियों के साथ की जाने वाली छेड़छाड़ व जबर्दस्ती पर रोक लगाई जाए। यदि कोई लड़की अमुक व्यक्ति से शादी के लिए तैयार है, तो गांव से ही शादी करके ही उसे ले जाना चाहिए, न कि करसड़ से।
3. अधिवेशन ने प्रस्ताव किया कि गांजे से होने वाले नुकसानों को देखते हुए उसके खिलाफ जनता में प्रचार करना चाहिए। साथ ही शराबखोरी और नशाखोरी के खिलाफ लोगों की जागरूकता बढानी चाहिए।
4. यदि किसी विधवा महिला से कोई पुरुष शादी करना चाहता है, तो उससे उस महिला के माता-पिता द्वारा पैसा वसूलने की प्रथा को समाप्त किया जाए।
5. जादू-टोना के नाम पर मनुष्यों की हत्याओं को रोक दिया जाए। ऐसी घटनाएं होने पर हत्यारों के खिलाफ जन-अदालत चलाकर सख्त सजा दी जाए।

गांजे के खिलाफ संघर्ष

बाबा बिहारीदास जैसी हिन्दू धार्मिक संस्थाओं ने सबसे पहले माड़ इलाके में गांजा उगाना शुरू किया। वह इतनी तेजी से फलता-फूलता गया कि आज गांजे की खेती एक खतरनाक धंधा बन चुकी है। इससे भोलेभाले आदिवासियों को क्या खतरा हो सकता है, इसे ध्यान में रखकर पार्टी ने इस पर पाबंदी लगाने का फैसला लिया और व्यापक प्रचार भी किया। पिछले 2-3 सालों से ऐसे लोगों के खिलाफ जो इस धंधे में लगे हुए हों, जन-पंचायत बुलाकर दण्डित भी किया गया।

इस सिलसिले में कुस्तुरमेट्टा गांव के सीताराम और ओकपाड़ गांव के रामलाल के खिलाफ डीएकेएमएस के नेतृत्व में सभी जनता की पंचायत बुलाई गई। उन्होंने अपनी गलती कबूल की, तो उन्हें गंभीर चेतावनी के साथ छोड़ दिया गया।

साथ ही, काननार और मुहंदी गांवों में डीएकेएमएस और केएएमएस के नेतृत्व में लोगों ने गांजे के पौधों को उखाड़ फेंका।

संगठनों के पोस्टरों से हत्यारे भंवरू सेठ के दिल की धड़कनें थमीं

नारायणपुर का भंवरू सेठ इस इलाके के अमीर व्यापारियों में से एक थे। आदिवासियों के भोलेभालेपन का नायाजय फायदा उठाकर उसने ढेरों धन कमाया। इसके जुर्मों के लिए पूर्व में एक बार छापामार दस्ते ने उसे दण्डित किया था। तबसे यह छापामार दस्ते से दुश्मनी करने लगा और जब तब पुलिस मुखबिरी करता रहा।

यह जन विरोधी, लुटेरा होने के अलावा कामांध भी था। इसने पुष्पा देवांगन नामक आंगनवाड़ी शिक्षिका के साथ शादी का झांसा देक उसे कुछ दिन साथ रखकर छोड़ दिया। जब उस महिला ने इस धोखेबाजी का विरोध किया, तो इसने जवाब दिया था, `एक-एक गली में मेरी एक-एक औरत है, किस-किस को साथ रख लूं।' लेकिन भंवरू को उसका जिन्दा रहना खतरा लग रहा था। इसलिए, दूसरे गांव में नौकरी कर रही उस महिला की भंवरू ने नारायणपुर के गुण्डों की मदद से हत्या कर दी। पुष्पा देवांगन के शरीर को टुकड़े-टुकड़े काटकर उसने मानवता की सारी सीमाएं तोड़ दीं। लेकिन जब यह मामला पुलिस में दर्ज होकर हल्ला मचने लगा, तो पुलिस को एक लाख रुपए देकर चुप करा दिया।

तबसे लोगों से यह मांग उठती रही कि इस जन दुश्मन, पुलिस मुखबिर और कामांध को सख्त सजा दी जाए। इस बीच `मार्च' के मौके पर डीएकेएमएस और केएएमएस ने पोस्टरों के जरिए प्रचार किया जनयुद्ध इस हत्यारे को सजा देगा।

सजा

कोहकामेट्टा गांव का निवासी आयतू एक ऊटपटांग व्यक्ति था और सभी लोगों से झगड़ा-फसाद किया करता था। अपने विरोधियों को वह बंदूक से उड़ाने की धमकी दिया करता था। कुछ माह पहले पुलिस ने उसे मुखबिर बनाकर हथियार चलाने का प्रशिक्षण दिया था। इसके साथ पुलिस ने किसी बड़े नक्सलवादी की हत्या करने का गुप्त समझौता किया। लेकिन छापामारों को जनता से यह खबर मिली थी। इस पर मार्च महीने में छापामारों ने जनता की अदालत में आयतू पर मुकदमा चलाकर मौत की सजा दी। ❖

सिएटल मन्त्रीस्तरीय सम्मेलन की विफलता

विश्व की जनता के साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष में एक और आगे कदम

अमरीकी शहर सिएटल में 30 नवंबर, 1999 से 3 दिसंबर तक प्रस्तावित डब्लूटीओ (विश्व व्यापार संगठन) का तीसरे मंत्रीस्तरीय सम्मेलन (सदस्य देशों के वाणिज्य मंत्रियों का सम्मेलन) जनता के अभूतपूर्व विरोध संघर्षों के चलते भग्न हो गया। इस सम्मेलन के जरिए अपने एजेण्डे (अपनी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के हितों) को हासिल करने की अमरीकी साम्राज्यवाद की तमाम कोशिशों पर पानी फिर गया। दुनिया की चारों दिशाओं से सिएटल शहर पहुंचे विभिन्न जन संगठनों के करीब 50,000 से ज्यादा प्रदर्शनकारियों ने उन चार दिनों तक सिएटल आने वाली सड़कों पर रुकावटें खड़ी करके जुझारू संघर्ष चलाए। इस तरह उन्होंने अमरीका के नेतृत्व में साम्राज्यवादी देशों द्वारा रची जा रही साजिशों को कदम-कदम पर नाकाम करते हुए अमरीकी साम्राज्यवाद के सीने पर ही साम्राज्यवादियों को करारा तमाचा लगाया।

विश्व की जनता के विरोध से भग्न हुए इस सम्मेलन ने इस सच्चाई को दोबारा स्पष्ट किया कि साम्राज्यवादियों के बीच, विशेषकर अमरीकी साम्राज्यवादियों तथा यूरोपीय यूनियन के साम्राज्यवादियों (जर्मनी, फ्रांस, ब्रिटेन आदि) के बीच अंतरविरोध दिनोंदिन गंभीर रूप ले रहे हैं। षड़यंत्रों, साजिशों और जोर-जबर्दस्ती के जरिए अपने स्वार्थ हितों को पूरा करने की साम्राज्यवादियों (विशषकर अमरीकी साम्राज्यवादियों) की कोशिशों को सम्मेलन के भीतर ही अफ्रीकी, लाटिनी अमरीकी और करेबियाई प्रांत के देशों से प्रतिरोध का सामना करना पड़ा - इस सम्मेलन की एक और विशष बात यह है। इतना ही नहीं, इस सम्मेलन ने भारत के शासक वर्गों के साम्राज्यवाद सेवक व गुलामी चरित्र को दुनिया के लोगों के सामने फिर एक बार नंगा करके दिखाया। केन्द्रीय वाणिज्य मंत्री मुरसोली मारन के नेतृत्व में भारत के प्रतिनिधिमंडल, जिसमें भाजपा के नेतृत्व वाले राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबन्धन, कांग्रेस और यहां तक कि `वामपंथी' के रूप में जाने जाने वाली संशोधनवादी पार्टियों के प्रतिनिधि भी शामिल हैं, ने कदम-कदम पर अमरीकी साम्राज्यवादियों की खुशामद करते हुए, खुद को तीसरी दुनिया के बाकी देशों से अलग करके साम्राज्यवाद का नमकहलाल नौकर साबित किया।

इस सम्मेलन की नाकामयाबी अमरीकी साम्राज्यवाद को लगा करारा झटका है। एक साल पहले से अमरीका जोर शोर से तैयारियां करता आया था ताकि इस सम्मेलन को अपनी इच्छाओं के अनुरूप सफलतापूर्वक चलाया जा सके। अमरीकी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के मजबूत अड्डों में से एक सिएटल शहर - दुनिया के सबसे बड़े अमरीकी बहुराष्ट्रीय निगम बोइंग और माइक्रोसॉफ्ट के केन्द्रीय कार्यालय इस शहर में हैं - को इस सम्मेलन के लिए खासतौर पर चुना गया। चार दिनों तक प्रस्तावित इस सम्मेलन में अमरीकी राष्ट्रपति बिल क्लिन्टन ने खुद तीन दिन भाग लेकर उसकी प्रतिष्ठा को बढ़ाना चाहा। सभी बड़े देशों के शासनाध्यक्षों को भी इस सम्मेलन में स्वयं उपस्थित होकर भाग लेने का निमंत्रण भेजा गया। (यह बात दीगर है कि किसी भी देशाध्यक्ष ने इस निमंत्रण को स्वीकार कर इस सम्मेलन में भाग नहीं लिया)। इस तरह, इस सम्मेलन को विशेष महत्व देकर, उसे सफलतापूर्वक संपन्न कराने की अमरीका की लाख कोशिशों के बावजूद जन प्रदर्शनकारियों के संघर्षों के फलस्वरूप उसे घोर पराजय का मुंह देखना पड़ा। इस सम्मेलन में अमरीकी साम्राज्यवादियों और उनकी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों द्वारा प्रदर्शित दंभ और शक्ति-प्रदर्शन की कवायदें सम्मेलन के बाहर हुए जुझारू जन प्रदर्शनों के चलते टांय-टांय फिस्स हो गईं। अपने महाशक्ति होने के अहंकार से तमाम प्रतिनिधियों की गरदन झुकाकर अपने एजेंडे को पारित कराने के लिए अमरीका द्वारा की गई कोशिशों को सम्मेलन के भीतर ही तीसरी दुनिया के कई देशों से प्रतिरोध झेलना पड़ा, जिससे ये कोशिशें भी पिट गईं।

अमरीकी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का अनधीकृत अड्डा माने जाने वाला सिएटल शहर, उन चार दिनों तक बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की मनमानी लूट-खसोट विरोधी संघर्षों के गढ़ के रूप में तब्दील हुआ था। इस सम्मेलन को अपने जुझारू संघर्षों से भग्न करने वाले प्रदर्शनकारियों ने सारी दुनिया को यह साबित कर दिखाया कि डब्लूटीओ बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की कठपुतली और उनके स्वार्थ हितों के संरक्षण के लिए अंतर्राष्ट्रीयता की आड़ में गठित और एक संस्था के अलावा कुछ भी नहीं है। "ये दुनिया किसकी है? ये दुनिया हमारी है! ये गलियां किसकी हैं? ये गलियां हमारी हैं? एकाधिकारवादी पूंजीवाद का नाश हो, विश्व व्यापार संगठन का नाश हो!" जैसे नारे चार दिनों तक सिएटल शहर की सड़कों में एक पल भी रुके बिना गूंजते रहे। दुनिया के बादशाह की तरह बड़े ठाट-बाट से इस सम्मेलन में जाकर अपनी धाक जमाने के क्लिन्टन के सपने प्रदर्शनकारियों के विरोधात्मक संघर्षों के चलते विफल हो गए। अपने ही देश में, अपनी राजधानी के निकट मौजूद सिएटल शहर में उसे चोर की तरह छिप-छिपकर प्रवेश करना पड़ा। हमारे शासक और उनके उंगलियों पर नाचने वाले अखबार जिस अमरीकी अध्यक्ष की 'दुनिया का शक्तिशाली व्यक्ति' कहकर प्रशंसा करते हैं, उसका अपने ही देश में यह हाल हुआ।

इस सम्मेलन का उद्देश्य एक और दौर की बातचीत के लिए एजेडा तैयार करना था। लेकिन यह सम्मेलन किसी एक भी विषय पर सहमति जुटाने में सफल नहीं हुआ। सम्मेलन के समापन तक एजेण्डे पर कोई सहमति तो नहीं हो पाई, बल्कि विरोधाभासपूर्ण वाद-विवादों और तीखे विरोध के बीच संपूर्ण विफलता के साथ समाप्त हुआ।

विवाद

इस सम्मेलन में दो किस्म के गंभीर विवाद उभरकर सामने

आए। साम्राज्यवादियों के बीच के अंतरविरोध पहली किस्म के हैं, जबकि साम्राज्यवादियों और पिछड़े देशों के बीच के विवाद दूसरी किस्म के हैं।

साम्राज्यवादियों के बीच उत्पन्न विवादों में कृषि क्षेत्र को दी जा रही (साम्राज्यवादियों द्वारा अपने-अपने देशों को दी जा रही) सब्सिडियों का मुद्दा भारी संघर्षों का कारण बना हुआ है। अमरीका इस बात पर अड़ा हुआ है कि बाकी देश कृषि-उत्पादों पर आयात शुल्क घटा दें, पूरी तरह समाप्त कर दें तथा निर्यातों को सब्सिडी देने की नीतियों और कृषि क्षेत्र की सहायता करने वाले कार्यक्रमों को खत्म करने के लिए विचार-विमर्श शुरू कर दें। उधर, यूरोपीय यूनियन के देश और जापान इस प्रस्ताव का कड़ा विरोध कर रहे हैं। अमरीका का एग्रि-बिजिनेस (कृषि उत्पादनों का व्यापार) ज्यादा से ज्यादा निर्यातों पर ही टिका हुआ है। इसीलिए यह व्यापार करने वाली अमरीकी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को उपरोक्त मुद्दे अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। इन मुद्दों पर सहमति हासिल करके वे दुनिया के पूरे खाद्य बाजार पर एकाधिकार कायम करना चाहती हैं। लेकिन इन प्रस्तावों को मानने यूरोपीय यूनियन के देश और जापान कतई तैयार नहीं हैं। इन प्रस्तावों को मानने से उनकी बहुराष्ट्रीय कम्पनियां और कृषि क्षेत्र बुरी तरह प्रभावित होंगे। (जहां यूरोपीय यूनियन के देश कृषि क्षेत्र को 42% सब्सिडी दे रहे हैं और जापान 69% सब्सिडी दे रहा है, वहीं अमरीका 16% सब्सिडी दे रहा है।)

विदेशी पूंजीनिवेश एक और मुद्दा है जो अमरीका और यूरोपीय यूनियन के देशों के बीच विवाद खड़ा कर रहा है। यूरोपीय यूनियन और जापान यह मांग कर रहे हैं कि डब्लूटीओ विदेशी पूंजीनिवेश पर न्यूनतम नियम-कायदे तैयार करे, जबकि अमरीका इससे साफ इनकार कर रहा है।

उधर तीसरी दुनिया के देशों द्वारा उठाए जा रहे मुद्दों से उत्पन्न विवादों का संबंध उन साम्राज्यवाद अनुकूल मुद्दों से है जो `गैट' के उरुग्वे दौर के नियमों में छिपे हैं। मसलन, अमरीका और यूरोपीय यूनियन के देश जहां एक ओर इस मांग पर अड़े हैं कि तीसरी दुनिया के देश औद्यौगिक उत्पादनों के आयात के शुल्कों में भारी कटौती करें, वहीं दूसरी ओर डंपिंग विरोधी शुल्कों के संरक्षण की नीतियों का फिर से निरीक्षण करने से साफ इनकार कर रहे हैं। दरअसल, इस तरह वे जिन कदमों पर अमल कर रहे हैं, उनमें अधिकांश डब्लूटीओ के नियमों के पूरी तरह खिलाफ हैं। इस तरह, एक ओर वे अपने बाजारों को सुरक्षित रखने के लिए उन्हीं के द्वारा बनाए गए डब्लूटीओ के नियमों का खुला उल्लंघन करते हुए ही, दूसरी ओर वे इस मांग पर अड़ रहे हैं कि तीसरी दुनिया के देश तमाम नियमों का कड़ाई से पालन करें और उन पर शीघ्रता से अमल करें; और यह धमकी भी दे रहे हैं कि ऐसा नहीं करने पर प्रतिबन्ध लगाए जाएंगे और बाहर कर दिए जाएंगे।

1995 में उरुग्वे दौर की चर्चाओं में जो सहमति हुई है, उसकी सीमाओं को भी पार करके वाणिज्य और वित्तीय क्षेत्रों में उदारीकरण की नीतियों को अत्यंत शीघ्रता से तीसरी दुनिया के देशों द्वारा लागू करवाने की मंशा से साम्राज्यवादियों द्वारा अपनाए गए जुल्मी प्रयासों के चलते ही अधिकांश विवाद खड़े हो गए।

भूमिका

`गैट' (वाणिज्य और शुल्कों पर सार्वभौमिक संधि) का ढांचागत स्वरूप ही डब्लूटीओ है। `गैट' की रूप-रेखा भी 1944 में आयोजित ब्रेट्टनवुड्स सम्मेलन में विश्व बैंक और अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, जो कि साम्राज्यवादियों की कठपुतलियां हैं, के साथ तैयार की गई थी। 1944 के ब्रेट्टनवुड्स सम्मेलन से ही विश्व बैंक और अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष स्थाई संगठनों के रूप में उभरे थे, जबकि `गैट' तब तक सदस्य देशों द्वारा कभी-कभार बैठक करके समझौते करने के मंच के रूप में रहा, जब तक 1995 में उसने डब्लूटीओ के नाम से एक ढांचागत रूप नहीं लिया। इन बैठकों को `दौर' कहा जाता है। 1947 में पहली बैठक हुई थी। उसके बात तीन बैठकें (केन्नडी दौर, टोक्यो दौर और उरुग्वे दौर) हुईं। उरुग्वे दौर के समझौते को ही आमतौर पर `गैट' समझौते के नाम से जाना जाता है। खुले व्यापार के नाम पर, निर्यात और आयात शुल्कों एवं अन्य रुकावटों को खत्म करके विश्व व्यापार पर साम्राज्यवादी देशों का दबदबा कायम करना ही इस `गैट' का मकसद है। प्रमुख साम्राज्यवादी देश (अमरीका, ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी, जापान आदि) विशेष बैठकें करके, आपस में हुए समझौतों को `गैट' के फैसलों (अब डब्लूटीओ के फैसलों) के रूप में बाकी देशों पर थोप रहे हैं।

इस प्रचार के बावजूद कि डब्लूटीओ के नियम-कायदों को उसके सदस्य देशों के प्रतिनिधियों की आम सहमति प्राप्त करने तैयार किया जाता है, सच तो यह है कि उनके असली कर्ता साम्राज्यवादी बहुराष्ट्रीय कम्पनियां हैं। `गैट' समझौते का हरेक नियम और हरेक प्रावधान किसी न किसी बहुराष्ट्रीय कॉर्पोरेट कम्पनियों के गुट द्वारा ही तैयार किया गया। मिसाल के तौर पर, 1993 में किए उरुग्वे दौर के समझौते के लिए बातचीत की प्रक्रिया 1986 में ही शुरू हुई थी। उसके पहले ही 1200 से ज्यादा अमरीकी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने बहुपक्षीय बातचीत का संयुक्त मोर्चा नामक संस्था स्थापित करके उसकी अगुवाई में अमरीकी सरकार द्वारा अपने प्रस्ताव प्रस्तुत करवाए थे। यूरोप की बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने उक्त संस्था की मदद की। बौद्धिक सम्पदा के अधिकारों की कमेटी, जो मॉनसेन्टो, डुपान्ट आदि 13 तगड़े अमरीकी बहुराष्ट्रीय निगमों का साझा मंच थी, की मांग पर उरुग्वे दौर में बौद्धिक संपदा के अधिकारों का अंश जोड़ा गया था। 1997 में डब्लूटीओ की अगुवाई में किए तीन अंतर्राष्ट्रीय समझौतों - प्रौद्योगिकी क्षेत्र की वस्तुओं पर समझौता, दूरसंचार क्षेत्र पर समझौता और वित्तीय क्षेत्र के उदारीकरण पर समझौता - को अंजाम देने में बहुराष्ट्रीय व्यापार कम्पनियों ने अहम भूमिका निभाई।

इस तरह किए गए समझौतों के फलस्वरूप, साम्राज्यवादियों के सहयोग से बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की वस्तुएं, सेवा क्षेत्र और विशेष रूप से वित्तीय पूंजी देशों की सीमाओं को मिटाकर अभूतपूर्व विस्तार कर सकीं। हालांकि प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में आए जबर्दस्त बदलावों (इंटरनेट, ई-कॉमर्स आदि) के कारण ही यह विस्तार होने तथा इन बदलावों के द्वारा ही देशों की सीमाओं को मिटा दिए जाने का प्रचार बढ़ा-चढ़ाकर किया जा रहा है, लेकिन वास्तव में यह विस्तार तीसरी दुनिया के देशों पर थोपी गई

`नियन्त्रणों में ढील', `निजीकरण', `सरकारी खर्च में कटौती',`ब्याज की दरों में कटौती' जैसी नीतियों का नतीजा ही है।

यह बात सच है कि `गैट' समझौते के चलते विश्व व्यापार में बेहद वृद्धि हुई है। लेकिन, इस सच्चाई को कि यह सारी वृद्धि बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का हितपोषण करने की दिशा में ही हुई है, किसी और ने नहीं, बल्कि खुद राष्ट्र संघ द्वारा घोषित रिपोर्टें ही उजागर कर रही हैं। यह भ्रामक प्रचार किया गया था कि विश्व व्यापार में वृद्धि होने से विश्व की जनता की प्रति व्यक्ति आय बढ़ेगी। लेकिन सच तो यह है कि जनता की प्रति व्यक्ति आय में हुई बढ़ोत्तरी के मुकाबले विश्व व्यापार (यानी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों) में पांच गुना अधिक तेजी से बढ़ोत्तरी हुई।

माराकेश समझौते पर हस्ताक्षर करने में पूरी तरह घुटने टेक देने वाले तीसरी दुनिया के शासक वर्गों को साम्राज्यवादी सरकारों ने भीख के तौर पर कुछ देने के वायदे किए थे ताकि वे यह प्रचार कर सकें कि उन्होंने इस समझौते के जरिए अपने देश की जनता के हित में बड़ा काम किया। लेकिन उन वायदों पर भी साम्राज्यवादियों ने आज तक अमल नहीं किया। मसलन, कपड़ों पर किए गए समझौते के मुताबिक तीसरी दुनिया के देशों से साम्राज्यवादी देशों में आयातित कपड़ों पर अमल किए जा रहे प्रतिबन्धों में एक-तिहाई को अभी तक समाप्त करना तय था, लेकिन मात्र 5 प्रतिशत प्रतिबन्धों को वापस लिया गया। साम्राज्यवादी अपने देशों में कृषि क्षेत्र को 335 अरब डॉलर की सब्सिडी दे रहे हैं। (अमरीका में हरेक बड़े किसान को सालाना 25,000 डॉलर की सब्सिडी मिल रही है।) दूसरी ओर, वे इस बात पर अड़े हुए हैं कि तीसरी दुनिया के देश खाद्य क्षेत्र को और स्वास्थ्य जैसे जन कल्याण के क्षेत्रों को एक पैसे की सब्सिडी भी न दें। `गैट' समझौते के ऐसे नियमों, जिनसे उन्हें नाम मात्र की असुविधा भी होती हो, पर भी अमल करने से इनकार करते हुए, अपने बाजारों की रक्षा करने की नीतियां अपना रहे हैं। इस वजह से तीसरी दुनिया के देशों को सालाना 700 अरब डॉलर का व्यापार घाटा झेलना पड़ रहा है। व्यापार की शर्तें दिनोंदिन निर्धन देशों को ज्यादा से ज्यादा लूटने की बन रही हैं। जबकि 30 साल पहले दुनिया के पांच अत्यंत सम्पन्न देशों और पांच निर्धनतम देशों की आयों में अंतर 30 : 1 अनुपात का रहा, इन तीन दशकों में यह अंतर 65 : 1 का हो गया। सम्पन्न देशों के सिर्फ 355 धनाढ्यों के पास इतनी संपदाएं हैं जो दुनिया की आधी आबादी की कुल संपत्तियों से अधिक हैं। गरीबी रेखा के नीचे जीने वालों की संख्या 1987 के मुकाबले अब 20 करोड़ बढ़ गई। सिर्फ 33 देश ही 1990 से 3 फीसदी की वार्षिक दर से सकल घरेलू उत्पाद हासिल कर पा रहे हैं।

इस तरह, माराकेश समझौते से मिली कामयाबी का फायदा उठाते हुए बहुराष्ट्रीय निगमों ने अपने-अपने क्षेत्रों में एकाधिकार हासिल करने के लिए विलयन की प्रक्रिया तेज कर दी। पिछले एक दशक में हुए बहुत बड़े विलयनों के परिणामस्वरूप, इनी-गिनी बहुराष्ट्रीय इजारेदारी कम्पनियों ने अपने-अपने क्षेत्रों के बाजारों में आधे से ज्यादा हिस्से पर कब्जा जमाया। अब वे तीसरी दुनिया के देशों की पेटेन्ट-प्रणालियों में बदलाव पेश करवा रही हैं ताकि अपने एकाधिकार को सुदृढ़ बनाया जा सके। पर्यावरण के संरक्षण के नाम पर, श्रम मानकों को सुधारने के बहाने अपने बाजारों के संरक्षण की नीतियों को थोपने को देख रही हैं।

डब्लूटीओ के इस तीसरे अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन (सिएटल मंत्रीस्तरीय सम्मेलन, जिसमें 134 सदस्य देशों के वाणिज्य मंत्रियों/प्रतिनिधिमण्डलों ने भाग लिया) के आयोजन के पीछे वाणिज्य के क्षेत्र की एक और दौर की बातचीत शुरू करने का इरादा रहा।

डब्लूटीओ के गठन के पहले `गैट' के नेतृत्व में थोपा गया उरुग्वे दौर का समझौता (इसी को माराकेश सम्मेलन कहा जाता है) 1 जनवरी, 1995 से लागू हो गया। इस समझौते के सभी नियमों को अमल में लाने के लिए उस पर दस्तखत करने वाले सभी देशों को 1 दिसंबर, 2004 तक की समयसीमा है। लेकिन उरुग्वे दौर के समझौते पर किए गए हस्ताक्षरों के सूखने से पहले ही, साम्राज्यवादियों ने एक ओर तीसरी दुनिया के देशों को इस समझौते को मानते हुए अपने देशों में वैश्वीकरण की नीतियों पर समयसीमा से काफी पहले ही अमल करने पर मजबूर करते हुए, और इसके लिए साम-दान-भेद-दण्ड के सभी उपाय आजमाते हुए, दूसरी ओर, नए अंशों को सामने लाकर एक और नए दौर की बातचीत के नाम पर उन पर लूट-खसोट का जाल और भी फैलाने की नई तैयारियां और साजिशें शुरू कर दीं।

माराकेश सम्मेलन में ही यह फैसला लिया गया था कि वाणिज्य और पर्यावरण के बीच के संबंध का अध्ययन करने के लिए उसके बाद गठित होने वाला डब्लूटीओ एक कमेटी नियुक्त करेगा। इसने वाणिज्य क्षेत्र के एजेण्डे को विस्तृत बनाने के लिए साम्राज्यवादियों को एक अच्छा बहाना उपलब्ध कराया। इसके अलावा, उरुग्वे दौर ने कृषि और सेवा क्षेत्रों में जनवरी 2000 से नई बातचीत का आह्वान किया था। इस बीच साम्राज्यवादियों ने बाद के दौर की बातचीत के एजेण्डे को इन्हीं अंशों तक सीमित नहीं रखते हुए बहुआयामी नए एजेण्डे की ओर बातचीत को बढ़ाने की षड़यन्त्रकारी कोशिशें शुरू कर दीं। यूरोपीय यूनियन के भूतपूर्व व्यापार आयुक्त लियान ब्रिट्टन ने 1996 से ही ऐसी नए दौर की बातचीत के लिए कोशिशें तेज कर दीं जो कृषि और सेवा क्षेत्रों में सभी को मान्य एजेण्डे के अंशों से काफी आगे बढ़ती हो। उसने इसका नाम मिलीनियम राउण्ड (सहस्राब्दी का दौर) रखा भी।

और इसके बाद, डब्लूटीओ द्वारा किए गए कई महत्वपूर्ण सम्मेलनों ने इसी लक्ष्य के अनुरूप ही एजेण्डे को विस्तृति देना शुरू किया। मंत्रीस्तरीय सम्मेलन डब्लूटीओ का सर्वोच्च अधिकार वाला अंग है। यह हर दो साल में एक बार आयोजित किया जाता है। साम्राज्यवाद ने इन मंत्रीस्तरीय सम्मेलनों के जरिए डब्लूटीओ के अधिकार का दायरा बढ़ाने की कोशिशें भी तेज कीं। 1996 के सितंबर माह में सिंगपूर में आयोजित पहले मंत्रीस्तरीय सम्मेलन में चार नए अंशों - पूंजी पर नियम, स्पर्धा की नीति, सरकार की संग्रहण नीति में पारदर्शिता और वाणिज्य के लिए रास्ता सुगम बनाना - का अध्ययन करने के लिए वर्किंग ग्रूपों का गठन किया गया। मई 1996 में जनीवा में आयोजित दूसरे मंत्रीस्तरीय सम्मेलन

में `ई-कॉमर्स' (इलेक्ट्रानिक व्यापार) को एजेण्डे पर लाया। इस बीच सूचना प्रौद्योगिकी क्षेत्र की कुछ विशिष्ट वस्तुओं पर शुल्क समाप्त करने वाले सूचना प्रौद्योगिकी समझौते (आइ.टी.ए.-I) पर हस्ताक्षर किए गए। इसके अलावा, सिंगापूर के मंत्रीस्तरीय सम्मेलन ने यह विशेष रूप से आह्वान किया कि अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर स्वीकृत महत्वपूर्ण श्रम मानकों का पालन किया जाए।

इस तरह, एक और व्यापक नए दौर की वाणिज्यिक बातचीत के लिए सिलसिलेवार भूमिका तैयार की गई। डब्लूटीओ द्वारा सिएटल में आयोजित तीसरा मंत्रीस्तरीय सम्मेलन का लक्ष्य इस नए दौर की बातचीत के लिए एजेण्डा तैयार करना था।

सिएटल सम्मेलन

इस सम्मेलन ने आज के अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के चार प्रमुख अंशों को स्पष्ट रूप से सामने लाया।

अमरीका की जोर-जबर्दस्ती

इसका नेतृत्व स्वयं अमरीका के अध्यक्ष बिल क्लिन्टन ने किया। इस सम्मेलन के स्थल पर पहुंचने से पहले जारी वक्तव्य में उसने आह्वान किया कि महत्वपूर्ण श्रम मानकों का पालन नहीं करने वाले देशों पर प्रतिबन्ध लगा दिया जाएं। उसने कटे पर नमक छिड़कते हुए एक अंतर्राष्ट्रीय समझौते पर हस्ताक्षर किया जिसमें `बाल मजदूरी के घोरतम स्वरूपों' पर पाबंदी लगाने का आह्वान किया गया।

अमरीकी वाणिज्य प्रतिनिधि के तौर पर इस सम्मेलन में भाग लेने वाली चार्लीन बार्शेफ्सकी ने इस सम्मेलन की सह-अध्यक्षा के अपने ओहदे का इस्तेमाल अमरीकी एजेण्डे को मानने पर अन्य देशों को मजबूर करने में किया। उसने डब्लूटीओ के प्रमुख मैकमूर, जोकि न्यू ज़ीलैण्ड का है, से मिलकर श्रम मानकों पर अमरीका के प्रस्ताव को स्वीकृति दिलवाने के लिए एकतरफा ही, बगैर सदस्य देशों के प्रतिनिधियों से विचार-विमर्श किए और उनके अनुमोदन के ही, कमेटी नियुक्त की। इस कदम से यह सच्चाई उजागर हो गई कि इस सम्मेलन में जोर-जबर्दस्ती से अमरीका ने अपनी ज़िद पूरी करने की कोशिश की है। कई पिछड़े देशों ने इस प्रस्ताव का अलोकतांत्रिक तरीके से पेश किया गया प्रस्ताव कहकर विरोध किया, तो चार्लीन बार्शेफ्सकी ने घमण्डी से जवाब दिया कि लोकतांत्रिक प्रक्रिया को दरकिनार करने और अपने आप ही चुनाव की प्रक्रिया अपनाने का अधिकार अमरीका को है।

यहां किसी को भी यह संदेह हो सकता है कि जबकि खुद अमरीकी साम्राज्यवादी ही श्रम मानकों और काम के हालात को सुधारने के कानूनों और बाल मजदूरी व्यवस्था को खत्म करने के कानून लाने पर तुले हुए हैं, तो ऐसे प्रगतिशील प्रस्ताव की आलोचना करना और विरोध करना क्या सर्वहारा के पक्षधरों के लिए अनुचित नहीं है। लेकिन, मजदूरों को बंधुवा मजदूरी की तर्ज पर काम करने को मजबूर होने तथा बाल मजदूरी की व्यवस्था के जारी रहने की बुनियादी वजह क्या है, इसका जवाब ढूंढ़ा जाए, तो यह बात आसानी से समझ में आती है कि अमरीका के ये आंसू सिर्फ घड़ियाली आंसू हैं। इन हालात की असली वजह मुनाफ़ाखोर पूंजीवादी और साम्राज्यवादी व्यवस्था ही है। साम्राज्यवादी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की नीति यह है कि अधिक से अधिक मुनाफे कमाने के लिए उत्पादन के केन्द्र वहीं खोला जाएं जहां पर श्रमशक्ति बेहद सस्ते में मिलती हो। मिसाल के तौर पर अमरीकी कंपनी जनरल मोटार्स जोकि दुनिया की सबसे तगड़ी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों में से एक है, जहां अमरीका स्थित अपने कारखाने में कार्यरत मजदूरों को 18.96 डॉलर प्रति घण्टे की दर से वेतन देती है, वहीं मैक्सिको स्थित अपने कारखाने के मजदूरों को ज्यादा से ज्यादा 1.54 डॉलर प्रति घण्टे वेतन ही दे रही है। यह बात जगजाहिर है कि थाईलैण्ड, ताइवान, मलेशिया, भारत वगैरह निर्धन देशों में अमरीकी बहुराष्ट्रीय कम्पनियां कितने वेतन दे रही हैं और किस तरह के श्रम मानकों पर अमल कर रही हैं। साम्राज्यवादी देशों में मजदूरों और जनता द्वारा लड़कर हासिल किए बेहतर काम के हालात, जीवन-स्तर और पर्यावरणीय प्रदूषण के नियन्त्रण व निवारण के कानूनों के चलते मुनाफों के घट जाने से चिंतित बहुराष्ट्रीय कम्पनियां अपने कारखानों को तीसरी दुनिया के उन देशों में स्थानांतरित कर रही हैं जहां बहुत सस्ते में श्रमशक्ति उपलब्ध हो, पर्यावरणीय प्रदूषण का खयाल नहीं रखा जाता हो और बंधुवा मजदूरी की प्रथा अमल में हो। हमारे देश में भोपाल के जहरीली गैस वाले नरसंहार के लिए जिम्मेदार अमरीकी बहुराष्ट्रीय कम्पनी यूनियन कॉर्बाइड ने ठीक इसी वजह से अपना कारखाना यहां लाया था। अब `वैश्वीकरण' की आंधी से भूगोल के दक्षिणार्ध में पांव पसारने वाली बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के अधिकांश कारखाने पर्यावरण के लिए काफी घातक हैं। तीसरी दुनिया के तीन देश चीन, इंडोनेशिया और मैक्सिको जहां पर हाल के समय में सबसे ज्यादा विदेशी पूंजी बही, अब पर्यावरण के मामले में धरती पर निर्मित नर्क में तब्दील हो रहे हैं। इतना ही नहीं, साम्राज्यवादियों के दबाव के चलते तीसरी दुनिया के देश अपनी प्राकृतिक संपदाओं को औने-पौने दामों में बेच रहे हैं। जंगल, खदानें और यहां तक कि मत्स्य-संपदा भी निर्यातों के चक्कर में लुटती जा रही है। जैसे-जैसे विदेशी पूंजी का प्रभाव बढ़ता जा रहा है, `निजीकरण', `सरकारी खर्च में कटौती', `वैश्वीकरण' आदि पर अमल बढ़ रहा है, इन देशों में लाखों उद्योग बंद होकर करोड़ों मजदूर सड़कों पर फेंक दिए जा रहे हैं। बाकी लोग अपने रोजगार को बनाए रखने के वास्ते किसी भी बंधुवा मजदूरी के लिए तैयार हो रहे हैं। माता-पिता को रोजगार न मिलने के कारण बाल मजदूरी खत्म होने की बात तो दूर, दिनोंदिन ज्यादा बढ़ रही है। खुद संयुक्त राष्ट्र संघ ने विश्व मानव विकास की वार्षिक रिपोर्ट में आंकड़े सहित इसके ब्यौरे दिए। तथ्य ये हैं, तो अमरीका क्यों इस जिद पर अड़ा हुआ है? इसका एक ही कारण है। मजदूर कल्याण, बाल मजदूरी का अंत और पर्यारण की सुरक्षा की आड़ में अपने देश में सस्ते दामों पर आयातित वस्तुओं को रोकना है। अपने घरेलू बाजार के संरक्षण के अलावा उसका दूसरा कोई मतलब ही नहीं है। मिसाल के तौर पर हाल ही में उसने भारत से निर्यात की जाने वाली बीड़ियों पर पाबंदी लगाई।

इधर, तीसरी दुनिया के देश, खासकर भारत व्यपार के एजेण्डे में महत्वपूर्ण श्रम मानकों का अंश जोड़ने का विरोध क्यों कर रहा है? गौरतलब बात यह है कि भारत `पेटेन्ट प्रणाली' के नियमों का उतना विरोध नहीं कर रहा है जो इस अंश से कई गुना ज्यादा खतरनाक हैं। भारत के प्रतिनिधिमण्डल के जाने से पहले यह आम सहमति थी कि करों में कटौती, कृषि, सेवा क्षेत्र आदि का उदारीकरण जैसे मुद्दों पर अमरीकी एजेण्डे का संपूर्ण अनुमोदन किया जाए, जबकि बाल मजदूरी की समाप्ति, श्रम मानकों में सुधार के मामले में कड़ा विरोध किया जाए। भारतीय प्रतिनिधिमण्डल का नेतृत्व करने वाले केन्द्रीय वाणिज्य मंत्री मुरसोली मारन ने घोषणा की कि बाल मजदूरी को समाप्त करने और श्रम मानकों में बेहतरी लाने का मतलब जहर खा लेना ही है तथा ऐसा करने पर भारत के निर्यातों को विदेशों में बनी वस्तुओं से मुकाबला कर सकने की क्षमता नहीं होगी। उसने तीसरी दुनिया के देशों के शासकों के वर्गीय चरित्र का वास्तविक प्रदर्शन किया: साम्राज्यवादियों द्वारा जारी लूट-खसोट का हम पूरा सहयोग करेंगे बशर्तेकि हमारे मजदूरों को लूटने का `अधिकार' के मामले में कोई समझौता नहीं होगा। इस तरह, सिएटल सम्मेलन ने साथ ही साथ तीसरी दुनिया के देशों के शासक वर्गों के साम्राज्यवादी-सेवक चरित्र और शोषक चरित्र को भी उजागर किया।

अमरीका और यूरोपीय यूनियन के बीच झगड़ा

इस सम्मेलन में इनके बीच का झगड़ा इतना बढ़ गया कि यूरोपीय यूनियन ने अमरीका द्वारा प्रस्तावित `अधीकृत' मंत्रीस्तरीय सम्मेलन की घोषणा के विरुद्ध एक वैकल्पिक घोषणा पेश की। इस वैकल्पिक घोषणा का जापान, स्विट्ज़रलैण्ड, यहां तक कि दक्षिण कोरिया जो कि अमरीकी साम्राज्यवाद के नमकहलाल सेवकों में एक है, ने भी समर्थन किया। डब्लूटीओ के समझौतों पर अमल करने में पिछड़े देशों को हो रही दिक्कतों पर ध्यान देने में अमरीका से बढ़कर दिलचस्पी प्रदर्शित करके यूरोपीय यूनियन ने पिछड़े देशों का समर्थन जुटाने की कोशिश की।

सम्मेलन के अंत में यूरोपीय यूनियन के वाणिज्य आयुक्त पास्कल लाम ने सम्मेलन के आयोजन में बरते जा रहे `मध्ययुगीन तरीकों' की आलोचना की। उसने यह कहकर अमरीका को झटका दिया, "अपने एजेण्डे को थोपने पर अमरीका का इतना दृढ़ निश्चय है कि वह यह भूल रहा है कि इसका अंजाम क्या होगा।"

तीसरी दुनिया के देशों द्वारा विरोध

जहां एक ओर भारत का प्रतिनिधिमण्डल अमरीका का पक्ष लेकर उसके एजेण्डे को सभी के ऊपर थोपने के प्रयास में अपनी भूमिका निभाने में व्यस्त रहा, वहीं बड़ी संख्या में तीसरी दुनिया के देशों ने फैसले लेने की प्रक्रिया में बरते जा रहे तानाशाहीपूर्ण एवं मनमाने तरीकों के खिलाफ अपना विरोध दर्ज किया। इन देशों द्वारा प्रकट किए गए विरोध को प्रतिबिंबित करते हुए मिस्र के वाणिज्य सलाहकार मुनीर ओहरान ने यूं कहा: "हमें अंधेरे में रख दिया गया। हमें बगैर कोई बात बताए ही सब कुछ टाल दिया गया। हमारे साथ जानवरों-सा सलूक किया गया।" अफ्रीका एकता संगठन (ओएयू) के प्रतिनिधि ने आरोप लगाया कि यहां बरते गए तरीकों में पारदर्शिता का नामोनिशान तक नहीं रहा और अफ्रीकी देशों को `बाजू में धकेलकर बाहर कर दिया गया।'

'ग्रीन रूम' की बातचीत की नौटंकी

डब्लूटीओ द्वारा की जाने वाली लगभग तमाम बातचीतें `ग्रीम रूम' (बन्द कमरे की) बातचीत के नाम से पुकारे जाने वाले तरीकों में होती आ रही हैं। जैसा कि शुरू में ही बताया जा चुका है, बड़े साम्राज्यवादी देशों द्वारा पहले ही अपने विशेष सम्मेलनों में किए गए समझौतों को डब्लूटीओ के समझौतों के नाम से बाकी देशों पर थोपने के लिए जो तरीका इस्तेमाल किया जाता है वही `ग्रीम रूम' बातचीत वाला तरीका है। ये बड़े देश तीसरी दुनिया के सिर्फ ऐसे देशों, जो पूरी तरह उनके अधीन हों, के प्रतिनिधिमण्डलों को इन कथित `ग्रीन रूमों' की बैठकों में बुलाकर पहले ही लिए गए अपने फैसलों को उनकी स्वीकृति हासिल करके, उसी का आम सहमति के रूप में चित्रण करके सम्मेलन के बाकी देशों पर थोप देते हैं। इन बातचीतों में किसी भी तरह की चर्चा को इजाजत नहीं होगी।

सिएटल सम्मेलन में छोटे देशों के कई वाणिज्य मंत्रियों को इन `ग्रीन रूमों' के इर्द गिर्द भी आने से सुरक्षा अधिकारियों ने रोक दिया। किसी तरह मशक्कत करके इन कमरों में दाखिला पाने वालों को, इसके बावजूद कि वे अपने-अपने देशों में मंत्री हैं, बैठने के लिए कुर्सी तक नहीं दी गई। इन कमरों में प्रवेश सिर्फ 23 देशों तक ही सीमित कर दिया गया। (साम्राज्यवादियों की पाद सेवा में तन-मन से जुटे भारत के प्रतिनिधिमण्डल को तो इजाजत दी गई। इन 23 देशों का चुनाव डब्लूटीओ के महा निदेशक ने अमरीका के आदेशों पर किया।

134 देशों की उपस्थिति से आयोजित इस बहुपक्षीय बातचीत में न्यूनतम शिष्टताओं का पालन भी नहीं किया गया। बातचीतों में `प्रमुख' भागीदारों (यानी साम्राज्यवादी बड़े देशों) ने छोटे और निर्धन देशों का खुलेआम अपमानित किया और भुला दिया। यहां पर बड़े देशों द्वारा खुलेआम बरते गए भेदभाव और घमण्ड ने असहनीय रूप ले लिया। इससे, स्वाभाविक रूप से, सम्मेलन के तीसरे दिन अभूतपूर्व विद्रोह भड़क उठा। उस दिन तीसरी दुनिया के देशों से दो जाहिर घोषणाएं हुईं। `गैट' और डब्लूटीओ के 50 साल के इतिहास में इस तरह सम्मेलन में ही विरोध व्यक्त करने की यह पहली घटना थी।

लाटिनी अमरीका और करेबियाई प्रांत के देशों की बड़ी संख्या द्वारा जारी विरोध वक्तव्य में यूं कहा गया : "सभी सदस्य देशों के हितों के संबंध में पर्याप्त संतुलन से नतीजों को मौका देने वाली पारदर्शिता से और आजादी से इस सम्मेलन में भाग लेने की स्थिति जब तक नहीं रहेगी, हम आम सहमति हासिल करने की प्रक्रिया में भाग नहीं लेने जा रहे हैं जो कि इसे मंत्रीस्तरीय सम्मेलन के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए जरूरी है।"

अफ्रीका एकता संगठन जिसमें अफ्रीका के सभी देश शामिल हैं, की घोषणा में यूं कहा गया : "यहां बरते जाने वाले रवैये को हम ठुकरा रहे हैं। मौजूदा हालात में हम आम सहमति प्राप्त करने

की प्रक्रिया में भाग नहीं ले सकते जो मंत्रीस्तरीय सम्मेलन के उद्देश्य हासिल करने के लिए जरूरी है।

भारत के प्रतिनिधिमण्डल द्वारा देश की साख और सम्मान को मिट्टी में मिलाते हुए प्रदर्शित गुलामी भरी विधेयता

भारत के विदेश मंत्री जसवंत सिंह के अमरीका के विदेश सचिव स्ट्रोब टालबोट के साथ किए गुप्त समझौते के मुताबिक भाजपा नेतृत्व वाली केन्द्र सरकार ने सिएटल सम्मेलन में अमरीका के सुर में सुर मिलाया। क्लिन्टन ने निर्धन देशों में अमल जिस `बंधुवा मजदूरी' के खिलाफ बात की, भारत के प्रतिनिधिमण्डल ने उससे कहीं ज्यादा `बंधुवा मजदूरी' ही की ताकि अपनी नमकहलाली साबित कर सके और अमरीकी प्रस्ताव को जिताया जा सके। लेकिन अजीबोगरीब बात यह है कि सिएटल सम्मेलन में अमरीका का गुलाम कहे जाने वाले राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबन्धन के मुरसोली मारन, जिसका ताल्लुक द्राविड़ मुन्नेट्रा कड़गम से है, और कांग्रेस के कमलनाथ के सुर में नव संशोधनवादी माकपा जो हमेशा साम्राज्यवाद विरोधी मंत्र जपती रहती है, के बिप्लब दास गुप्त ने भी सुर मिलाया।

अमरीका के आगे नत मस्तक हो प्रणाम करने की प्रक्रिया की भूमिका सिएटल सम्मेलन से काफी पहले ही तैयार की गई। संसद के शीतकालीन सत्र में डब्लूटीओ के नियमों के अनुरूप भारतीय कानूनों को संशोधित करने के लिए कुल सात विधेयक पेश किए गए। पिछले एक दशक के दौरान एक के बाद एक सत्तारूढ़ हुई कांग्रेस, संयुक्त मोर्चा और भाजपा गठबन्धन की सरकारों ने आयातों पर करों में इस स्तर तक कटौती की जो डब्लूटीओ द्वारा निर्देशित स्तर से कम नहीं है। खाद्य पदार्थों सहित हजारों वस्तुओं के आयात पर मौजूद तमाम प्रतिबंधों को हटा दिया गया। वित्तीय क्षेत्र के उदारीकरण, बीमा क्षेत्र जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्रों में विदेशी पूंजी को कानूनी तौर पर स्वीकृति आदि इस स्तर पर और इतनी रफ्तार से किए गए जिसकी उम्मीद साम्राज्यवादियों ने भी नहीं की। जनता को कुछ न कुछ फायदा करने वाले किसी भी विधेयक को या जनता की मांग पर मजबूर होकर पेश किए जाने वाले किसी भी विधेयक (मसलन, छत्तीसगढ़, झारखण्ड और उत्तरांचल आदि अलग राज्यों के गठन संबंधी विधेयक) को पारित करने में दशकों का समय लगाने वाली भारतीय संसद ने साम्राज्यवादी विधेयता को प्रदर्शित करने वाले इस तरह के विधेयकों को आनन-फानन और बिना किसी बड़ी बहस के ही पारित किया।

इतना ही नहीं, सिएटल सम्मेलन से काफी समय पहले से ही मीडिया में बढ़ा-चढ़ाकर प्रचार किया गया कि साम्राज्यवादियों के सारे फैसलों के सामने भारत को घुटने टेक देने चाहिए, भले ही यह मालूम भी क्यों न हो कि वे देश के हितों के खिलाफ हैं। जहां भारत के उद्योग संघ ने इस विषय का खुलकर सामने आते हुए समर्थन किया, वहीं बूर्जुवाई राजनेताओं ने इन्हीं मतों को तुतलाहट भरे शब्दों में व्यक्त किया जिसके वे आदी हैं।

भारत के दलाल पूंजीपतियों के वर्गीय संगठन सीआईआई (भारतीय उद्योग महासंघ), असोछाम, एफाई, सीसीआई ने यह खुलेआम ही प्रचार छेड़ दिया कि भारत को पिछड़े देशों के साथ नहीं खड़े होना चाहिए तथा साम्राज्यवादी महाशक्तियों के समर्थन में खड़े होने से उसे (अपने को) फायदा होगा।

श्रम मानकों में सुधार तथा बाल मजदूरी प्रणाली की समाप्ति जैसे मुद्दों, जिनसे भारत के सर्वहारा को तथा भारत की जनता को कुछ हद तक फायदा हो सकता है, पर अमरीका से सीधी टक्कर लेने से बाज नहीं आने वाले भारतीय शासक वर्गों ने न सिर्फ देश के तमाम हितों पर चोट करने वाले और देश की संप्रभुता को मिट्टी में मिलाने वाले अमरीका के तमाम प्रस्तावों का अनुमोदन करने के लिए सहमति जताई, बल्कि अमरीका के प्रस्तावों का विरोध कर रहे तीसरी दुनिया के देशों को मनवाने का कर्तव्य भी अपने कंधों पर लेकर, उसके लिए कई पापड़ भी बेले। सिएटल सम्मेलन के पहले बोलते हुए प्रधानमंत्री ने कहा कि भारत पहले के `दरवाजे बंद करने' का रवैया अपनाने (इसका मतलब और कुछ नहीं बल्कि घरेलू बाजार और संपदाओं का संरक्षण करने के लिए मौजूद नाम नात्र के कानूनों) के बजाए, लचीला रवैया अपनाएगा।

पूर्व में भारत ने जब माराकेश सम्मेलन में भी और उसके बाद में गठित डब्लूटीओ के सम्मेलन में भारत ने वह हर जगह हस्ताक्षर किए जहां पर साम्राज्यवादियों ने करने को कहा था, वह भी तब जब खुद प्रधानमंत्री के ही शब्दों में `दरवाजे बंद करने' का रवैया अपनाया हुआ था। इस कड़वी सच्चाई को फिर एक बार याद करने से यह समझने में कोई कठिनाई नहीं होगी कि अब यह प्रस्तावित `लचीला रवैया' जनता पर कितना घातक सिद्ध हो सकता है। (सिएटल सम्मेलन में यह साबित भी हो गया। मजदूरों का जीवन-स्तर सुधारने और बाल मजदूरी प्रणाली को समाप्त करने, पर्यावरण के संरक्षण जैसे कदमों का कड़ा विरोध करना भी तथा साम्राज्यवादियों को देश को औने-पौने दामों में बेचने की प्रक्रिया जारी रखना भी इस `लचीले' रवैए के दो पहलू हैं।

इस सम्मेलन में ई-कॉमर्स, सूचना प्रौद्योगिकी क्षेत्र, कृषि उत्पादनों पर करों में कटौती या समाप्ति, सब्सिडियों में कटौती या समाप्ति आदि मुद्दों पर भारत ने अमरीका के प्रस्तावों का समर्थन किया (इसके बावजूद कि पहले ही सस्ते दामों पर आयात हो रहे गेंहू, खाद्य तेलों, रबड़, चीनी जैसे कृषि उत्पादनों के चलते भारत के किसान तबाही के कगार पर खड़े हो गए हों)। और उसने यूरोपीय यूनियन द्वारा प्रस्तावित वैकल्पिक घोषणा का विरोध किया और अमरीका की घोषणा का समर्थन किया। यहां गौरतलब बात यह है कि इसके बावजूद कि यूरोपीय यूनियन द्वारा प्रस्तावित घोषणा में वे तमाम मुद्दे थे जिनकी मांग भारत सरकार `अमल करने के मुद्दे' कहकर किया करती थी, भारत के प्रतिनिधिमण्डल ने उस घोषणा को साफ ठुकरा दिया। भारत के शासक वर्गों की गुलामी प्रवृत्ति इतने घटिया से घटिया स्तर पर पहुंच गई कि भारत

जिन प्रावधानों की `अवश्य अमल करने वाले प्रावधानों' के रूप में मांग करता रहा, उनमें से एक पर भी अमल करने के लिए अमरीका के कतई तैयार नहीं होने के बावजूद, भारत ने डब्लूटीओ की तमाम मांगों का पूरी विधेयता से आंखें मूंदकर अनुमोदन किया। अमरीका भारत से आयात होने वाले कपड़ों पर अधिक कर जारी रखा हुआ है। (जबकि अमरीका द्वारा लगाए जाने वाले करों की औसत दर 5% है, भारत से आयात किए जाने वाले कपड़ों पर 25% कर लगाया जाता है।) भारत के उत्पादनों पर डंपिंग विरोधी करों की संख्या बढ़ा दी गई। (जब किसी देश के बाजार में उस देश में उत्पादित वस्तुओं के कम दाम पर वही वस्तुएं आयात की जाती हैं, उन्हें बड़े पैमाने पर आयात होने से रोककर अपने बाजार को सुरक्षित करने के लिए जो अतिरिक्त कर लगाता है, उन्हें डंपिंग विरोधी कर कहते हैं।) इतना ही नहीं, ठीक सिएटल सम्मेलन के थोड़े ही पहले बाल मजदूरी से बनाए जाने का बहाना करके भारत से बीड़ियों के आयात पर पाबंदी लगा दी गई जो तब तक अमरीकी बाजार में प्रवेश करके स्थानीय सिगरेट बाजार को चुनौती दे रही थीं। जहां अमरीका इस तरह एक ओर खुद डब्लूटीओ के सारे नियम-कायदों को धता बताकर मनमाने फैसले लेते हुए, दूसरी ओर दुनिया के सभी देशों (खासकर निर्धन देशों) को उन नियम-कायदों का पालन नहीं करने पर प्रतिबंध लगाने की धमकी देते हुए `सख्त' रवैया अपना रहा है, वहीं भारत के शासकों ने `दरवाजे बंद रखने' का रवैया त्यागकर शुष्क स्वर में भी विरोध प्रगट नहीं करने वाला `लचीला' रवैया अपना रखा है। अपनी अमरीकी प्रभुओं की हरेक मांग पूरी करने के लिए कई पापड़ बेले हैं।

भारत की जनता के लिए सिएटल सम्मेलन की विशेष रूप से गौरतलब बात यह है कि एक ओर भाजपा गठबंधन और कांग्रेस और दूसरी ओर तथाकथित `वामपंथी' पार्टियों, जो लगातार एक-दूसरे से लड़-झगड़ते हुए देश की जनता को इस भ्रम में रखती आ रही हैं कि वे उत्तर और दक्षिण ध्रुव हैं, ने सिएटल में एक ही स्वर अपनाया। साम्राज्यवाद अनुकूल पार्टियों के रूप में जाने जाने वाली भाजपा गठबंधन की पार्टियों और कांग्रेस को छोड़ भी दें, तो साम्राज्यवाद का, विशेषकर अमरीकी साम्राज्यवाद का मुखर विरोधी होने का ढोंग करने वाली `वामपंथी' पार्टियों की ओर से सिएटल सम्मेलन में भारत के प्रतिनिधिमण्डल के सदस्य के तौर पर भाग लेने वाले बिप्लब दास गुप्त जो कि नव संशोधनवादी माकपा का सांसद है, ने अमरीका के सुर में सुर मिलाने में मुरसोली मारन का साथ निभाया। जहां लाटिनी अमरीका, अफ्रीका और करेबियाई प्रांत के देशों ने भी किसी न किसी हद तक विरोध प्रगट किया, भारत के प्रतिनिधिमण्डल ने तो जिसमें यह `क्रान्तिकारी और साम्राज्यवाद विरोधी कम्युनिस्ट' भी शामिल है, दुनिया के तमाम लोगों के सामने भारत की साख और सम्मान को तथा संप्रभुता को मिट्टी में मिलाकर अपने को साम्राज्यवादियों का `चमचा' साबित किया।

लहरों की तरह उमड़े जन प्रदर्शन - लगातार चले जुझारू संघर्ष

इस सम्मेलन के उपलक्ष्य पर दुनिया भर से आए हजार जन संगठनों ने डब्लूटीओ द्वारा बरती जा रही जन विरोधी नीतियों का विरोध करते हुए एक पर्चा जाहिर किया। सम्मेलन के चारों दिन सिएटल शहर को घेरे रखे 50,000 प्रदर्शनकारियों में अत्यधिक लोगों का मकसद यही था कि अंधाधुंध `लाभ लोलुपता' से व्यापार के उदारीकरण की प्रक्रिया को तेजी से आगे बढ़ा रही इजारेदार कॉर्पोरेट कंपनियों के बुरे मंसूबों का विरोध किया जाए।

सम्मेलन के शुरूआती दिन तक ही विरोध-प्रदर्शनकारियों ने सिएटल शहर की तमाम सड़कों पर कब्जा किया। सिएटल पहुंचे अलग-अलग देशों के प्रतिनिधि प्रदर्शनकारियों के घेरे को तोड़कर जाने में विफल होकर अपने-अपने होटल के कमरों में ही फंस गए। किसी भी तरह सम्मेलन में पहुंचने के इरादे से तिरछे रास्तों पर जा रहे कुछ प्रतिनिधियों पर प्रदर्शनकारियों ने रंग छिड़ककर विरोध प्रगट किया। उद्घाटन समारोह के प्रमुख वक्ता अमरीकी विदेश मंत्री मडलाईन अलब्राइट, संयुक्त राष्ट्र संघ का महासचिव कोफी अन्नान, डब्लूटीओ के महानिदेशक मैकमूर, अमरीका का वाणिज्य प्रतिनिधि चार्ल्स बार्शेफ्सकी जैसे महामहिम अपने कमरों से बाहर निकलकर सम्मेलन के स्थल पर नहीं पहुंच सके। एक तरह से कहा जाए, तो विश्व पूंजी के संरक्षण के लिए कमर कस रखे विभिन्न देशों के महामहिम मंत्रियों और उनके प्रतिनिधियों को जन समुदायों ने कैद कर दिया। प्रदर्शनकारियों ने इतना समर्पित हो दृढ़ संकल्प से अपने विरोध संघर्षों को जारी रखा कि तमाम औपचारिकताओं से तामझाम के साथ होने वाले उद्घाटन समारोह को रद्द किया गया। जनता द्वारा अमल नाकेबंदी के चलते प्रतिनिधि सम्मेलन के स्थल नहीं पहुंच सके जिससे पूर्व निर्धारित ढंग से शुरूआत नहीं हो सकी।

उसके बाद सम्मेलन के आयोजन को मौका देने के लिए तथा शहर की गलियों से प्रदर्शनकारियों को खदेड़ने के लिए एड़ी से चोटी तक हथियारबंद अमरीकी पुलिस बलों को बड़ी संख्या में तैनात किया गया। पुलिस बलों के अलावा नेशनल गॉर्ड बलों तथा स्टेट ट्रैपर बलों (अर्ध सैनिक बलों) को भी तैनात किया गया। शहर के मेयर ने `आपातकाल' लागू करने की घोषणा की। करफ्यू लगाई गई। साम्राज्यवादियों के ठाठ-बाट और तड़क-भड़क को प्रदर्शित करने के लिए पूरी तरह सजाया गया सिएटल शहर लड़ाई के मोर्चे में तब्दील हो गया। अमरीका के पाशविक पुलिस बलों ने लाठीचार्ज, आंसू गैस, पेप्पर स्प्रे, रबड़ की गोलीबारी और यहां तक कि कंकशन ग्रेनेडों का भी इस्तेमाल करके प्रदर्शनकारियों और सिएटल के आम लोगों पर दमनचक्र चलाया। इसके खिलाफ जनता वाहनों, दुकानों और पुलिस द्वारा खड़े किए गए अवरोधों को ध्वस्त करते हुए लड़ी। छापामार तरीके अपनाते हुए पुलिस से भिड़ी। जन प्रदर्शनकारियों और पुलिस के बीच जबर्दस्त भिड़ंतें हुईं। सिएटल शहर की सड़कें खून से लाल हो गईं। शहर की सड़कों को प्रदर्शनकारियों से दोबारा हासिल करने के लिए पुलिस को कदम-कदम पर लड़ाइयां करनी

पड़ीं। उसके बाद प्रदर्शनकारियों ने अपनी रणनीति बदली। आमने-सामने की लड़ाई को वापस लेकर बगलों से हमले करने का तरीका अपनाया। नकाबपोश कार्यकर्ताओं ने मार्गावरोध खड़े किए और मुख्य चौराहों को दोबारा कब्जे में लिया।

कुल मिलाकर पुलिस काफी मशक्कत के बाद प्रदर्शनकारियों को तितर-बितर करके सम्मेलन को प्रारंभ कर सकी। लेकिन संघर्षों का सिलसिला समाप्त नहीं हुआ, बल्कि अगले दिन भी जारी रहा। पुलिस के इस पाशविक दमनकाण्ड में सैकड़ों लोग बुरी तरह घायल हुए और 600 लोगों को गिरफ्तार किया गया। पुलिस की पाशविकता इस हद तक बढ़ी कि उन्होंने आंसू गैस के गोले जन-समूहों के बीच दागने के बजाए सीधा प्रदर्शनकारियों के चेहरों को निशाना बनाकर दागे। इसके परिणामस्वरूप प्रदर्शनकारियों को जबड़ों पर चोटें आईं और हड्डियां टूट गईं। पेप्पर स्प्रे का प्रयोग सीधा आंखों पर करने से आंखों को क्षति हुई। गिरफ्तार लोगों को यातनाएं दी गईं। यहां तक कि पुलिस ने आम राहगीरों को भी बुरी तरह पीटा। लेकिन इस अमानवीय दमनकाण्ड प्रदर्शनकारियों के मनोबल को रत्ती भर भी नहीं तोड़ सका। उन्होंने सड़कों पर नाटकों के प्रदर्शन किए, गाने गाए और खाली पड़े मकानों पर कब्जा किया। विलासितापूर्ण कारों में बैठकर जुलूस की शक्ल में सम्मेलन के स्थल जा रहे तीसरी दुनिया के देशों के तानाशाहों की खिल्ली उड़ाई। शेल (तेल का कारोबार करने वाली बहुराष्ट्रीय कम्पनी जो कि नाइजीरिया में केन सारो विवा की हत्या के लिए जिम्मेदार है), यूनियन कॉर्बाइड (भोपाल जहरीली गैस का उत्पादक), मनसॉनटो (टर्मिनेटर बीजों का आविष्कारक) आदि अपराधी बहुराष्ट्रीय इजारेदार निगमों के खिलाफ सिएटल की गलियों में जन-अदालतें चलाकर मानवजाति के खिलाफ जारी उनके घोरतम जुर्मों के लिए दुनिया की जनता के फैसले सुनाए। मानव शृंखलाएं बनाई गईं। तीसरी दुनिया पर थोपे गए कर्जों के बोझ के खिलाफ एवं बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के लाभों के लिए दुनिया की चारों ओर किए जा रहे कत्लेआमों के खिलाफ नारेबाजी करते हुए जुलूस निकाले गए।

तीसरे दिन तक प्रदर्शनों के स्वरूप में बदलाव आया उस दिन पुलिस की पाशविकता की निंदा करते हुए, सिएटल शहर में बोलने की आजादी के हनन का विरोध करते हुए और अवैध रूप से गिरफ्तार किए गए प्रदर्शनकारियों की बिना शर्त रिहाई की मांग करते हुए प्रदर्शन आयोजित किए गए। हजारों प्रदर्शनकारियों ने सिएटल की जेल को घेर डाला। सिएटल में घोषित सैनिक शासन भी प्रदर्शनों को थोड़ा भी रोक नहीं सका। सम्मेलन के चारों दिन विरोध प्रदर्शन बिना रुके चलते रहे।

दुनिया के तमाम बूर्जुवाई प्रसार माध्यमों ने खासकर भारतीय मीडिया ने यह भ्रामक प्रचार किया कि ज्यादातर प्रदर्शनकारी अमरीकी साम्राज्यवाद के पक्षधर हैं, और क्लिन्टन की मांगों से मेल खाने वाली कुछ ही मांगों - पर्यारण और श्रम मानकों तथा बाल मजदूरी व्यवस्था - को बढ़ा-चढ़ाकर महत्व दिया। हालांकि कुछ अमरीकी मजदूर संघों ने अमरीकी मीडिया के भ्रामक प्रचार से प्रभावित होकर इस डर से कि अमरीका द्वारा उठाए गए उक्त मुद्दों का समाधान न होने पर उनकी नौकरियां छिन सकती हैं, उक्त मुद्दों पर विरोध प्रदर्शन किए। लेकिन सच्चाई यह है कि अत्यधिक प्रदर्शनकारियों ने डब्लूटीओ और उसे नियंत्रित कर रही बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को आड़े हाथों लेते हुए प्रदर्शन किए। ऐसे विरोध प्रदर्शन सिएटल के अलावा दुनिया के कई दूसरे शहरों में भी किए गए जिनमें लंदन, पैरिस, मनीला महानगरों में किए गए प्रदर्शन विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

लंदन महानगर के बीचों बीच हुए प्रदर्शन ब्रिटेन में रेलवे के निजीकरण के खिलाफ हुए। प्रदर्शनकारियों ने हॉस्टन रेलवे स्टेशन पर कब्जा करके लंदन की भूमिगत रेलवे व्यवस्था को ठप्प कर दिया। प्रदर्शनकारियों ने यहां भी पुलिस से भीषण लड़ाई लड़ी। पैरिस शहर में हजारों प्रदर्शनकारियों ने यह मांग करते हुए कि डब्लूटीओ इजारेदार कॉर्पोरेट कम्पनियों के मुनाफों के बजाए दुनिया की जनता के हितों को ज्यादा महत्व दे, नारे लगाते हुए प्रदर्शन किए।

सिएटल सम्मेलन की विफलता

साम्राज्यवादी इजारेदारी पूंजी के खिलाफ दुनिया की जनता की लंबी लड़ाई में एक और आगे कदम

सिएटल सम्मेलन ने यह बात फिर एक बार साबित की कि डब्लूटीओ साम्राज्यवादी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का हितपोषण करने तथा उनकी अवैध कमाई को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर कानूनी वैधता प्रदान करने के लिए स्थापित एक और संगठन ही है। सिएटल सम्मेलन के आयोजन के लिए गठित `सिएटल मेजबानी संगठन' के सह-अध्यक्ष बोइंग और माइक्रोसॉफ्ट नामक बड़ी इजारेदारी कम्पनियों के प्रमुख थे। इस सम्मेलन के आयोजन का पूरा खर्च कॉर्पोरेट कम्पनियों ने ही उठाया। बोइंग, माइक्रोसॉफ्ट, जनरल मोटार्स, फोर्ड, हनिवेल, हेवलेट-पैकर्ड, मोटारोला, आइबीएम, कॉटर, पिल्लर, लुफ्तान्सा आदि बड़ी बहुराष्ट्रीय इजारेदारी कम्पनियों ने इस सम्मेलन के आयोजन में भाग लिया। उन्होंने इस सम्मेलन के लिए 40 करोड़ रुपए बतौर चंदा दिए। `बनिया तभी बाढ़ में जाए जब कोई फायदा हो' की तरह इन कम्पनियों के दान गुण के पीछे उनकी लाभ-लोलुपता ही है। चंदे देने वाली बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को विभिन्न देशों के प्रतिनिधियों से मिलने की विशेष सुविधाएं दी गईं ताकि वे अपने व्यापार के हितों को आगे बढ़ा सकें। जहां एक ओर इन कम्पनियों को इस तरह की सुविधाएं दी गईं, वहीं सम्मेलन में भाग लेने सम्माननीय प्रतिनिधि के रूप में आए अधिकांश छोटे और निर्धन देशों के मंत्रियों एवं प्रतिनिधिमण्डलों के साथ कैसा सलूक किया गया, यह हम ऊपर देख चुके हैं।

उपरोक्त बातों से यह स्पष्ट हो रही है कि डब्लूटीओ बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के व्यापार हितों को आगे बढ़ाने के लिए गठित संगठन के अलावा कुछ भी नहीं है। `उदारीकरण' और `मुक्त व्यापार' के परदों की आड़ में एक-दूसरे का गला काटने से भी बाज नहीं

आते हुए, साजिशों और षड़यंत्रों के सहारे मुनाफों की खातिर विश्व मानवजाति पर चाहे कितना क्रूरतम अत्याचार भी करने वाली इजारेदारी कॉर्पोरेट कम्पनियां तैयार हैं। `आम सहमति से किए गए समझौते', `जनतांत्रिक तरीके से मामले का निपटारा' जैसे आकर्षक नारों की आड़ में एकतरफा और जनता का जीना दुर्भर कर देने वाली शर्तें थोप रहे वित्तीय पूंजी के बर्बर हत्यारों के गिरोह अपनी गतिविधियां जारी रखे हुए हैं। मैकमूर (डब्लूटीओ का वर्तमान प्रमुख), चार्लीन बार्शेफ्सकी (अमरीकी वाणिज्य प्रतिनिधि), पास्कल लाम (यूरोपीय यूनियन के व्यापार आयुक्त) जैसे लोग इन अंतर्राष्ट्रीय दैत्यों के नमकहलाल सेवक ही हैं - परदे पर दिखाई देने वाले अदाकार ही हैं।

सिएटल में प्रदर्शनकारियों ने ठीक इसी सच्चाई को उजागर किया। उन्होंने डब्लूटीओ के अलावा, उसे परदे के पीछे से नचवाने वाली बहुराष्ट्रीय कम्पनियों पर भी हमले किए। हालांकि इन प्रदर्शनकारियों में कुछ लोगों को यह मालूम न हो कि डब्लूटीओ, विश्व बैंक, अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष जैसे संगठनों को जन्म देने वाली साम्राज्यवादी व्यवस्था ही असली दुश्मन है और उसका सफाया करना ही इस समस्या का समाधान है। लेकिन, इस तरह के ढोंगी अंतर्राष्ट्रीय संगठनों के खिलाफ दुनिया की चारों ओर जनता में जितना गुस्सा पनप रहा है उसे कुछ हद तक प्रतिबिंबित करते हुए उन्होंने विरोध संघर्ष किए। अपने विरोध के जरिए उन्होंने इस सच्चाई को भी उजागर किया कि इन अंतर्राष्ट्रीय खून के प्यासे दैत्यों को चुप्पी साधकर बर्दाश्त करने के लिए विश्व की जनता कतई तैयार नहीं है।

सिएटल सम्मेलन इस सच्चाई को स्पष्ट किया कि विभिन्न जन समूह - मजदूर, छात्र, महिलाएं, पर्यावरण विद, जनवाद के प्रेमी आदि बहुराष्ट्रीय कंपनियों के प्रभुत्व को चुनौती देने और उसकी रोकथाम करने के लिए आगे आ रहे हैं। निहत्थे और शांतिपूर्ण ढंग से प्रदर्शन कर रहे लोगों पर किया गया जुल्म प्रदर्शनकारियों के नैतिक बल का सबूत है।

सिएटल में प्रदर्शनकारियों ने शंखनाद करके साम्राज्यवादियों को चेतावनी दी कि विश्व की जनता साम्राज्यवादी इजारेदारी कंपनियों और उनके इशारों पर चलने वाले विभिन्न देशों के अफसरों और मंत्रियों की साजिशों को अब बर्दाश्त नहीं करेगी जो गुप्त मंत्रणाओं के जरिए समझौते करके उन्हें विभिन्न देशों के बीच किए गए अंतर्राष्ट्रीय समझौतों के रूप में चित्रित करते हैं। उन्होंने अपना खून बहाकर साबित किया कि विश्व की जनता 1995 के माराकेश समझौते के समय के मुकाबले अब ज्यादा जागृत हुई है तथा अब से साम्राज्यवादियों की साजिशें और योजनाएं बिना किसी प्रतिरोध का सामना किए, बेरोकटोक नहीं चल सकेंगी। 1998 में विश्व की जनता ने एकजुट होकर अपने विरोध के जरिए पूंजीनिवेश पर बहुपक्षीय समझौते को हराकर वापस लौटा दिया था। अब सिएटल सम्मेलन के खिलाफ हिंसात्मक विरोध संघर्ष छेड़कर साम्राज्यवाद और उसके संगठनों के खिलाफ जारी संघर्ष में एक और आगे कदम डाला। ❖

(...पृष्ठ 44 का शेष)

का भी ध्यान में रखना चाहिए।

विश्व के आदिवासी संगठनों ने 1996 में ही संयुक्त राष्ट्र संघ से उन्हें कबीलों के रूप में पुकारने का विरोध करते हुए, मूलनिवासी कहे जाने की मांग की। संयुक्त राष्ट्र संघ के कार्य-समूह ने प्रस्ताव रखा है कि भारत की अनुसूचित जन जातियों को आदिवासी जन का हिस्सा माना जाए।

भारत सरकार ने इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया है। उसका कहना है कि अनुसूचित जन जातियां आदिवासी जन नहीं हैं। क्योंकि -

1. अनुसूचित जन जातियां भारत के मूलनिवासियों के एक मात्र वंशज नहीं है, बल्कि भारत विविध समूहों के विलयन की प्रक्रिया में है।
2. जन जातियों से भिन्न सामाजिक एवं सांस्कृतिक विशिष्टताओं वाले न तो जन जातियों के प्रति कोई भेदभाव बरतते हैं और न ही उन पर अपना प्रभुत्व कायम रखे हुए हैं। जन जातियों में कई अल्प संख्यक सांस्कृतिक एवं धार्मिक समुदायों में से है।
3. `आदिवासी' शब्द भारतीय नौकरशाही एवं उच्च वर्ग को मंजूर नहीं है। वो उनको अनुसूचित जन जाति या गिरिजन कहते हैं।

संघ परिवार तो सुनियोजित साजिश के तहत ही आदिवासियों को `वनवासी' या वनों में रहने वाले `हिन्दू' कह रहा है। यह सब आदिवासियों के खिलाफ हो रही साजिश का हिस्सा ही है।

ऊपर की समस्या अकेले गुजरात के आदिवासियों की नहीं है, बल्कि भारत के तमाम आदावासी जनों की समस्या है। आदिवासियों के अस्तित्व पर हर तरफ से खतरा बढ़ रहा है। जबसे संघ परिवार ने सत्ता की बागडोर अपने हाथों में ली तब से यह खतरा और भी बढ़ गया है। देश के अल्प संख्यक धर्मों की भी यही स्थिति है। आरएसएस के सरसंघ चालक चुने जाने के बाद 1 मई, 2000 को रायपुर में बोलते हुए सुदर्शन ने कहा कि इसलाम का भारतीयकरण होना होगा। इस तरह आदिवासियों और अल्पसंख्यक धर्मोमं को असुरक्षा की स्थिति का सामना करना पड़ रहा है। 1991 की जन गणना के मुताबिक हिन्दुओं की आबादी 83 फ़ीसदी है। देश के 12 प्रतिशत से ज्यादा मुसलमानों और 8.08 प्रतिशत आदिवासियों के अलावा सिख, जैन, बौद्ध, ईसाई धर्मों के लोगों को किस में शामिल किया गया है, यह वो अधिकारी ही जाने जिन्होंने ये आंकड़े जुटाए। इस तरह के गलत आंकड़ों से भी उनके अस्तित्व पर सवालिया निशान खड़ा हो जाता है। ऐसे हालात में, हिन्दू धार्मिक कट्टरपंथियों और सांप्रदायिकतावादियों के खिलाफ लड़ना ही उनके सामने एक मात्र रास्ता है। इस संघर्ष का देश के सभी तबकों और समुदायों के लोगों तथा जनवाद के प्रेमियों को समर्थन करना चाहिए। लड़ने से ही अपनी संस्कृति बनाए रखी सकती हैं, साथ ही नई संस्कृति के बीज बोए जा सकेंगे। ❖

बुरे विषय अच्छे विषयों में बदलते हैं

(क्या एक मार्क्सवादी-लेनिनवादी पार्टी में बुरे विषयों और गलत कार्यदिशाओं का सिर उठाना आश्चर्य की बात है? चिन्ताजनक बात है? नहीं, बिलकुल नहीं वे द्वंद्वात्मक नियम के अनुसार ही सिर उठाते हैं। बुराई का दोहरा स्वभाव होता है। कुछ परिस्थितियों में बुराई अच्छाई में बदल सकती है। चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के ऐतिहासिक अनुभव से इस समझ पर रोशनी डालने वाला प्रस्तुत सैद्धांतिक लेख 1971 में `पेकिङ रिव्यू' पत्रिका में प्रकाशित हुआ था।)

हमारे काडरों और योद्धाओं ने हमारी पार्टी के दो कार्यदिशाओं के बीच संघर्ष के इतिहास का ध्यानपूर्वक अध्ययन किया ताकि सिद्धांत और राजनीतिक कार्यदिशा पर शिक्षित हो सके। इस अध्ययन के दौरान हमारे सामने यह सवाल आया। पार्टी में वाङ मिङ, ली शावो ची जैसे राजनीतिक दगाबाज़ों का पैदा होना तथा गलत कार्यदिशाओं का सिर उठाना जिनका उन्होंने प्रतिनिधित्व किया था, जैसे दुष्परिणामों को ठीक से कैसे समझ लेना चाहिए?

बुराई (बुरे विषयों) का दोहरा स्वभाव

हमने मार्क्सवादी-लेनिनवादी दार्शनिक विचार का अध्ययन करने के बाद, हमारी पार्टी के भीतर दो कार्यदिशाओं के बीच के संघर्ष के ऐतिहासिक अनुभव का द्वंद्वात्मक भौतिकवादी दृष्टिकोण से विश्लेषण किया। अध्यक्ष माओ ने यूं कहा: "सही राजनीतिक और सैनिक कार्यदिशा सद्योजनिता से और शांत स्वभाव से पैदा नहीं होती, बल्कि वह संघर्ष के दौरान ही पैदा होती है।" अध्यक्ष माओ की यह सीख यह समझ लेने में उपयोगी सिद्ध हुई कि सही कार्यदिशा के पैदा होने और विकसित होने के लिए सही कार्यदिशा और गलत कार्यदिशा के बीच संघर्ष एक अनिवार्य शर्त है। हमारी पार्टी का इतिहास पार्टी के भीतर मौजूद वामपंथी और दक्षिणपंथी कार्यदिशाओं पर अध्यक्ष माओ की क्रान्तिकारी कार्यदिशा द्वारा किए गए संघर्ष से हमेशा विजयी होने का इतिहास ही है। ठीक इन दो कार्यदिशाओं के बीच संघर्ष से ही हमारी पार्टी सिलसिलेवार मजबूत बनती रही है; विकसित हुई है; और विस्तारित हुई है। पार्टी में गलत कार्यदिशाओं, दुष्ट तत्वों और बुरी बातों का पनपना न तो अजीब सी बात है और न ही घबराने की बात है। सवाल सिर्फ यह है कि उसे ठीक से कैसे समझना चाहिए और उसके साथ कैसे निपटना चाहिए।

अध्यक्ष माओ ने हमें यह सीख दी: "हमें यह जरूर सीखना होगा कि विषयों के सभी पहलुओं का मूल्यांकन करते हुए समस्याओं को हर तरफ से परखा जाए। कुछ परिस्थितियों में एक बुरा विषय अच्छे नतीजे दे सकता है, और अच्छे विषय से बुरे नतीजे निकल सकते हैं। हरेक विषय का दोहरा स्वभाव होता है। हालांकि वह एक ओर क्रान्ति को चोट पहुंचाता है, फिर भी आलोचना का सामना करने के बाद वह नकारात्मक मिसाल के तौर पर जनता को सबक सिखाता है। इस तरह वह और ज्यादा जीतें हासिल करने में क्रान्ति की मदद करता है।

पहले क्रान्तिकारी गृहयुद्ध के काल (1924-27) में विश्वास-घाती चेन-टुशि के गिरोह ने अध्यक्ष माओ की सही कार्यदिशा का मूर्खता से विरोध किया था; दक्षिणपंथी आत्मसमर्पणवादी कार्यदिशा का सिर पर चढ़ा लिया था। उसने किसानों, निम्न-पूंजीपति वर्ग, मध्यम पूंजीपति वर्ग और खासकर, सशस्त्र सेनाओं पर नेतृत्व गंवा दिया था। इसके परिणामस्वरूप, शक्तिशाली तरीके से आगे बढ़ती रही वह महान क्रान्ति (1924-27 की क्रान्ति) नकामयाबी के साथ खत्म हुई। हमारी पार्टी की स्थापना के बाद थोड़े ही समय में, जब चीनी क्रान्ति उत्कर्ष पर थी, इतना बड़ा दुष्परिणाम झेलना पड़ा। लेकिन इसी से क्या हम यह कह सकते हैं कि इससे चीनी क्रान्ति की भविष्य पर कोई आशा नहीं रह गई? नहीं, ऐसा नहीं कह सकते! अध्यक्ष माओ के नेतृत्व में पूरी पार्टी ने छन त्यू-शी की दक्षिणपंथी अवसरवादी कार्यदिशा के खिलाफ दृढ़ता से संघर्ष किया; महान क्रान्ति की नाकामयाबी से तथा गलत कार्यदिशा से पार्टी को हुए भारी नुकसान से सबक सीखा। पार्टी इस मार्क्सवादी-लेनिनवादी सच्चाई को समझ सकी: "चीन में यदि हथियारबन्द संघर्ष नहीं होगा, तो सर्वहारा की, या जनता की, या फिर कम्युनिस्ट पार्टी की कोई प्रतिष्ठा नहीं होगी। क्रान्ति की जीत असंभव होगी।" इस तरह एक बुरा विषय अच्छे विषय में बदल गया। अध्यक्ष माओ की सर्वहारा क्रान्तिकारी कार्यदिशा का विकास संघर्षों के जरिए हुआ। और तबसे हमारी पार्टी ने देहाती आधार-क्षेत्रों के निर्माण, मजदूर-किसान लाल सेना की स्थापना और हथियारबन्द ताकत से राजसत्ता छीनने का रास्ता पकड़ा। इस तरह क्रान्ति नए सिरे से दोबारा विकसित हुई।

कृषि क्रान्ति युद्ध के काल (1927-37) में, अपने को "शत प्रतिशत का बोलशेविक" बताने वाले विश्वास-घाती वाङ मिङ ने "ली ली-सान की कार्यदिशा का विरोध करने" के नाम पर जनता को गुमराह करने के लिए कई पापड़ बेले थे। उसने पार्टी के नेतृत्व पर कब्जा करके ली ली-सान की कार्यदिशा को पीछे छोड़ देने वाली अपनी वामपंथी अवसरवादी कार्यदिशा को सशक्त रूप से सामने लाया। नतीजतन, आधार-क्षेत्रों में मौजूद पार्टी की ताकतों में 90 प्रतिशत को तथा दुश्मन के कब्जे वाले क्षेत्रों में सौ प्रतिशत पार्टी की ताकतों को गंवाना पड़ा। लाल सेना को दीर्घयात्रा करने पर मजबूर होना पड़ा। यह वाकई बड़ा बुरा विषय है कि वाङ मिङ की अवसरवादी कार्यदिशा से चीनी क्रान्ति को भारी आघात लगा था। लेकिन, खून की कीमत चुकाकर सीखे सबक से

हमारी पार्टी, उसके सदस्यों और काडरों ने वाङ मिङ को बेनकाब कर दिया; उसका एक ढोंगी क्रान्तिकारी के रूप में पर्दाफाश किया। वे यह समझ सके कि यह "शत प्रतिशत का बोलशेविक" एक पाखंडी मार्क्सवादी था। वाङ मिङ की गलत कार्यदिशा के खिलाफ संघर्ष के जरिए ही पार्टी के तमाम कॉमरेड इस गहरी समझ पर पहुंच सके कि अध्यक्ष माओ की क्रान्तिकारी कार्यदिशा ही एक मात्र सही रास्ता है। जनवरी 1935 में त्सुन-ई में हुई बैठक में पार्टी के केन्द्रीय नेतृत्व में वाङ मिङ की वामपंथी अवसरवादी कार्यदिशा के प्रभुत्व को समाप्त किया गया। समूची पार्टी पर अध्यक्ष माओ का नेतृत्व कायम किया गया। इस तरह पार्टी के सही रास्ते पर आना संभव हो सका। हालांकि वाङ मिङ की कार्यदिशा बहुत बुरी बात ही थी, लेकिन उसके खिलाफ आलोचना और संघर्षों के जरिए जनता गलत कार्यदिशा से होने वाले खतरे को और उसके पैदा होने की वजहों को समझ सकी। जनता गलत कार्यदिशा का विरोध करने वाली अध्यक्ष माओ की क्रान्तिकारी कार्यदिशा के औचित्य के बारे में अवगत हो सकी। इस तरह बुरी बात एक ऐसी अच्छी बात में बदल गई जिसने चीनी क्रान्ति की जीत की गारन्टी दी।

सर्वहारा के राजसत्ता पर काबिज होने के बाद, ज्यों-ज्यों समाजवादी क्रान्ति गहराती गई, हमारी पार्टी के भीतर दो कार्यदिशाओं के बीच संघर्ष और भी धारदार बन गया; और भी जटिल हो गया। मार्क्सवाद के प्रति और एकता के प्रति दिखावटी लगाव जताते हुए ही, ली शावो-ची जैसे पाखण्डी मार्क्सवादियों ने वास्तव में संशोधनवाद और फूटवाद पर अमल किया। जब-जब मुंह खोलते, तो जोरदार शब्दों और वाक्यांशों का प्रयोग करते हुए उन्होंने सर्वहारा तानाशाही को ढहाकर पूंजीवाद को बहाल करने की अपनी नाकाम कोशिश के तहत साजिशें और षड़यंत्र किए। लेकिन अध्यक्ष माओ ने महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति को चलाने के लिए जन समुदायों को गोलबन्द किया तथा (ली शावो-ची गिरोह के) अपराधपूर्ण षड़यंत्रों का सही समय पर पर्दाफाश करके हरा दिया। ली शावो-ची की प्रतिक्रियावादी संशोधनवादी कार्यदिशा के खिलाफ व्यापक पैमाने पर, काफी गहराई में जाकर की गई आलोचना ने समूची पार्टी को गहन शिक्षा दिलाई। इन कड़वे संघर्षों में समूची पार्टी, समूची सेना और देश की तमाम जनता समाजवाद के ऐतिहासिक काल के लिए पार्टी की बुनियादी कार्यदिशा को गहराई से समझ सकीं; वर्ग-संघर्ष के दीर्घकालिक, तीखे और पेचीदा स्वभाव को और अच्छी तरह समझ सकीं। इस संघर्ष ने समूची पार्टी, समूची सेना और देश की तमाम जनता को असली मार्क्सवाद और ढोंगी मार्क्सवाद को अलग करके देख सकने की अपनी ताकत और क्षमता को बढ़ाने के लिए मार्क्सवाद-लेनिनवाद-माओ विचारधारा को और भी चेतनापूर्वक तथा ध्यानपूर्वक अध्ययन करने की प्रेरणा दी। इसने सर्वहारा तानाशाही को ज्यादा मजबूत करने के लिए जारी संघर्ष के लिए अनुकूल हालात बनाए। पूंजीवाद को बहाल करने के सपने देखने वाले सभी पाखण्डी मार्क्सवादियों के खिलाफ और भी शक्तिशाली तरीके से लड़ने में यह संघर्ष उपयोगी रहा।

इस सब ने यह सच्चाई पूरी तरह साबित की: "सकारात्मक और नकारात्मक उदाहरणों से, बार-बार दी जाने वाली शिक्षा से तथा तुलना करने व अंतर देखने की प्रक्रिया से ही क्रान्तिकारी ताकतें और क्रान्तिकारी जनता अपने को मजबूत बना सकती हैं, परिपक्वता हासिल कर सकती हैं और जीत को पुख़्ता कर सकती हैं। एक गलत कार्यदिशा नकारात्मक उदाहरण के जरिए हमारे शिक्षकों में से एक हो जाती है। नकारात्मक उदाहरणों से शिक्षा देने वाले शिक्षकों का महत्व कम करने वाले और न समझने वाले समग्र द्वंद्वात्मक भौतिकवादी नहीं हो सकेंगे।

पार्टी के भीतर दो कार्यदिशाओं के बीच संघर्ष समाज में होने वाले वर्ग-संघर्ष का पार्टी के अंदर अभिव्यक्ति होना ही है। यह एक भौतिक वास्तविकता है जिससे मनुष्य की इच्छा या अनिच्छा का कोई संबंध नहीं है। वर्ग, वर्ग-संघर्ष, पूंजीपति वर्ग और समाज पर उसका प्रभाव - इनका जब तक अस्तित्व रहेगा, तब तक हमारी पार्टी में गलत कार्यदिशाएं, बुरे तत्व और बुरी बातें अनिवार्यता से उपजती हैं। हमें उन्हें स्वीकारने में हिम्मत दिखानी होगी; उनका पर्दाफाश करना चाहिए और उन पर जीत हासिल करनी चाहिए। एक समाजवादी समाज पराजित शोषक वर्ग अपनी पराजय से कभी समझौता नहीं करेंगे, बल्कि अलग-अलग रास्तों में हमसे जी-जान से लड़ेंगें। इसलिए, हमारी पार्टी के भीतर पार्टी सदस्य का नकाब पहनी हुई पार्टी विरोधी ताकतों तथा मार्क्सवाद-लेनिनवाद की रट लगाते रहने वाले मार्क्सवाद-लेनिनवाद के दुश्मनों का जन्म होना आश्चर्य की बात नहीं है, बल्कि वह भौतिक वास्तविकता के नियमों के अनुरूप ही है। लेकिन कुछ कॉमरेडों को एकपक्षीय दृष्टिकोण के मत होते हैं। उनमें संपूर्ण और समग्र क्रान्तिकारी चेतना का अभाव है। हालांकि वे सैद्धांतिक तौर पर इससे सहमत होंगे कि वर्ग-संघर्ष लंबे अरसे तक चलने वाला तीखा और जटिल संघर्ष है, लेकिन वे उम्मीद रखते हैं कि वर्ग-संघर्ष कम समय में ही खत्म हो जाए और आसानी से व बेरोकटोक चले। वे अक्सर बुरी बातों का सामना करने के लिए मानसिक तौर पर तैयार नहीं रहते हैं। जब वाकई कोई बुराई होती है, तो उसे पचा लेना उन्हें मुश्किल होता है। कुछेक बार वे अनावश्यक रूप से चिंता में पड़ जाते हैं। यह सब इतिहास के विकास से संबंधित द्वंद्वात्मक नियम के खिलाफ है।

बदलाव के लिए कुछ हालात जरूरी होंगे

यह संभव है कि एक बुरा विषय अच्छे विषय में बदल जाए। लेकिन इस बदलाव के संभव होने के लिए कुछ हालात जरूरी होंगे। अध्यक्ष माओ ने हमें यूं सिखाया: "कुछ हालात में, अमुक अंतरविरोध के दो विरुद्ध पहलुओं में हरेक, अपने बीच संघर्ष के फलस्वरूप, अपने को अपने *(शेष पृष्ठ 51 पर...)*

धर्मनिरपेक्षता का नकाब पहनी सरकार (राज्य) द्वारा विशाल आदिवासी बस्तर की स्कूलों में वितरित हिन्दू धर्म के पुराण-ग्रंथों को जला डालो!

1991 की जनगणना के मुताबिक भारत में 67.76 मिलियन आदिवासी हैं। भारत की पूरी आबादी में यह संख्या 8.08 प्रतिशत है। हालांकि आदिवासी भारत भर में फैले हुए हैं। लेकिन आज भी जंगली और पहाड़ी इलाकों में अधिकतर आदिवासी जीवनयापन कर रहे हैं। देश के 70 प्रतिशत से ज्यादा आदिवासी मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, उड़ीसा, बिहार, आन्ध्रप्रदेश, पश्चिम बंगाल और गुजरात में केन्द्रित हैं। 1991 की जन गणना के मुताबिक मध्यप्रदेश की आबादी 6,61,35,862 है जिसमें आदिवासियों की तादाद 1,32,27,172 - यानी 23.27% है। यह पूरे देश में ही सबसे बड़ी संख्या है।

इन आदिवासियों के हिन्दूकरण की प्रक्रिया हमारे देश में शुरू से ही चलती आ रही है। इसके बावजूद कि उनके अपने विशाल इलाके हैं, वे इस देश में सत्ता से वंचित किए जा रहे हैं। वे अपने विशिष्ट जीवन ढंग से, जोकि अब भी कायम है, दिन-प्रतिदिन जबरन दूर किए जा रहे हैं। उनकी अपनी भाषाएं और विशेष संस्कृतियां होने के बावजूद, उनका आए दिन परायीकरण किया जा रहा है। देश की पूरी सत्ता को अपनी मुट्ठी में रखे चंद शासक वर्गों की भाषा को राजभाषा का दर्जा मिलना, उनकी संस्कृति का उच्च संस्कृति के रूप में इतिहास में स्थान प्राप्त करना और विभिन्न कबीलों, राष्ट्रीयताओं और संस्कृतियों की जनता पर उनका दबदबा कायम करना - यह सब हम देख ही रहे हैं। हालांकि इन आधिपत्यवादी नीतियों का जनता जहां-तहां अपनी शक्ति अनुसार विरोध करती आ रही है। इसके बावजूद भी जनता अपना विरोध और प्रतिरोध अलग-अलग स्तर पर जारी रखी हुई है। इसी के तहत बस्तर के आदिवासी भी शुरू से ही भारत के शासक वर्गों द्वारा थोपी जा रही हिन्दू संस्कृति का शुरू से ही विरोध कर रहे हैं। फिर भी मध्यप्रदेश सरकार विशेष रूप से बस्तर के जंगली इलाकों में मौजूद आश्रमशालाओं और ग्राम पंचायतों को रामायण के ग्रंथ मुफ्त में वितरित कर रही है। करीब 700 पृष्ठों की इस एक किताब की बाजार में 700 रुपए की कीमत होती है। इन सड़े-गले हिन्दू पुराण-ग्रंथों पर इतने बड़े पैमाने पर जनता के धन का दुरुपयोग करते हुए, आज इन आदिवासी इलाकों में जहां इनका कोई ताल्लुक नहीं है, वितरित करना हिन्दू सांप्रदायिकता की साजिश के अलावा कुछ भी नहीं है। विभिन्न कबीलों के आदिवासियों को अपनी-अपनी भाषाओं में ये ग्रंथ दिए जा रहे हैं। `माड़िया रामकथा', `मुरिया रामकथा' और `हल्बी रामकथा' के नामों से बड़ी सुंदरता से प्रकाशित किए गए इन ग्रंथों के आमुख मुख्यमंत्री और गृहमंत्री ने लिखे (लिखवाए) जिनमें इनकी खूब प्रशंसा की गई। `बुद्धिजीवियों' का एक वर्ग भी जो विश्वविद्यालयों में बैठकर जनता के धन से ऐशोआराम करते हुए शासकों की सेवा करने में पुराने जमाने के राजाओं के दरबारी विद्वानों को भी पीछे छोड़ देते हों, सरकार की इन घिनौनी कार्रवाइयों में बेशर्मी से सहयोग दे रहा है। ऐसे समूह में से एक हीरालाल शुक्ल ने इन ग्रंथों का लेखन-कार्य करके अपने जन विरोधी चरित्र को प्रदर्शित किया।

इन रामायणों के आमुख में मुख्यमंत्री ने गोण्डी भाषा पर दिखावटी प्यार उंडेलते हुए कहा कि गोण्डी भाषा में समृद्ध व विशाल लोकसाहित्य है और तुलसी रामायण के प्रकाशन से लुप्त हो रही गोण्डी भाषा पुनरुज्जीवित हो जाएगी। उन्होंने जन आन्दोलन पर ताने भी मारे कि, "आज अनेक `वाद' साहित्यगगन पर घटाटोप बनकर छाए हुए हैं। उनमें से बहुत से `वादी' दलित, पीड़ित और शोषित मानवता का कल्याण करने का बीड़ा उठाए हुए हैं।" मुख्यमंत्री ने यह कहकर खुशी जाहिर की कि भारत की आजादी की स्वर्ण जयंती और तुलसीदास की 5 सदियों पुरानी यादों में आदिवासियों को श्रीरामचरितमानस पहुंचाया जा रहा है। 5 सदियों से पहले रची गई ईसा पूर्व की इस मनगढ़ंत कहानी को 20वीं सदी के अखिरी चरण में आदिवासी लोगों में वितरित करना उनका अपमान है।

यह सच है कि गोण्डी भाषा में विशिष्ट लोकसाहित्य है। ऐतिहासिक विकासक्रम में मनुष्य ने जो प्रगति हासिल की, उसमें भाषा का विकास बहुत महत्वपूर्ण है। सभी प्राचीन भाषाओं में समृद्ध साहित्य है। वह मेहनतकशों की विशिष्ट उपज है। मेहनत से दूर, चैन की जिन्दगी जीते हुए `कुलीन (कामचोर) वर्ग' द्वारा रचित काल्पनिक साहित्य से वह कहीं मेल नहीं खाता। लेकिन बहुसंख्यक जनता का साहित्य लिपिबद्ध नहीं किया जा सका। भाषा के विकास के शुरूआती चरण में अपनी भावनाओं को व्यक्त करते हुए लोगों द्वारा मुंह से पैदा की गई अजीब-सी ध्वनियां, यदि मुख्यमंत्री सुनना चाहें, तो अभी भी अबूझमाड़ के पहाड़ों में रहने वाले गोण्डों के दिलों से सुनने को मिल सकती हैं। कम्प्यूटर का ऐसा कोई सॉफ्टवेयर भी उपलब्ध नहीं है जोकि इन्हें सुरक्षित रख सके। हजारों वर्षों से, कई पीढ़ियों से विरासत में मिलते आ रहे स्थानीय गोण्डी जनता के साहित्य को किसी भी सरकार ने लिपिबद्ध करने का बीड़ा नहीं उठाया। अब तो मुख्यमंत्री यह कह रहे हैं कि लुप्त होने के कगार पर खड़ी गोण्डी भाषा तुलसी रामायण के गोण्डी भाषा में आने से पुनरुज्जीवित हो जाएगी। लेकिन सच तो यह है कि गोण्डी भाषा के पतन के सर्वोच्च चरण है यह तुलसी रामायण का प्रकाशन। इसीलिए विशाल इलाके में फैले हुए गोण्डों ने मुख्यमंत्री के इस अजीबोगरीब तर्क से तरस आकर अपने पर थोपे जा रहे रामायण को जला डालने का फैसला लिया।

जहां मुख्यमंत्री ने गोण्डों पर घड़ियाली आंसू बहाए, वहीं

पूर्व गृहमंत्री चरणदास महंत ने अपने विभाग के अनुरूप ही आमुख में `आतंकवाद' पर टूट पड़ते हुए अपनी बेवकूफी का प्रदर्शन किया। उन्होंने यह कहते हुए अफसोस जाहिर किया कि "आज के युग में जब पारिवारिक मर्यादाएं टूट रही हैं, सामाजिक समन्वय के लिए संघर्ष मचा है, सत्ता की लूट में नैतिकता ताक पर रखी जा रही है, कथनी कुछ और करनी कुछ को सफलता का माध्यम माना जा रहा है, राजनीतिक चेतना तथा दूरदर्शिता दलीय स्वार्थों में सीमित होने लगी है, तथा आतंकवाद फैल रहा है।" लेकिन इन सभी के लिए ये लुटेरे शासक वर्ग और उनका `राज्य' किस हद तक जिम्मेदार हैं, यह बताने से मुकर जाने वाले `मूर्ख' को यह समझ पाना मुश्किल है कि आतंकवाद क्यों फैलता है। उन्होंने आगे लिखा, ".... तो भारतीय जीवन को चिरन्तन प्रेरणा देने वाले (पाठकों को ध्यान रहे कि इन भलेमानुसों के तमाम काले कारनामों के लिए प्रेरणा रामायण और महाभारत है जो कि कातिल दारासिंग से लेकर रथयात्राओं के लिए जाने वाले आडवाणी तक के कहने में भी झलकता है), हमें जगाने वाले श्रीगोस्वामी तुलसीदास की स्मृति बरबस ही हमारे मानसपटल में उठती है।" गोण्डी के समृद्ध लोकसाहित्य को जिसे स्वयं मुख्यमंत्री भी मान लेते हैं, को लिपिबद्ध करके भावी पीढ़ियों को देने के बजाए, ये नेता तुलसी रामायण का गोण्डी अनुवाद करके दे रहे हैं। एक ओर खुद को धर्मनिरपेक्षता के दावेदार बताते हुए, दूसरी ओर विभिन्न धर्मों वाले इस देश में हिन्दू पुराण-ग्रंथ प्रकाशित करना उनकी हिन्दू सांप्रदायिक मानसिकता का प्रमाण है। यह दूसरे धर्मों के साथ किया गया अपमान है। और तो और यह गोण्डी जनता के मौखिक साहित्य को दफन करने का कदम है जोकि लिपि के न होने के बावजूद जनता में लम्बे समय को कायम है। महंत ने अपने आमुख में यह भी लिखा, "आदिवासी अब भी एक दूसरे से मिलने पर 'राम-राम' कहकर सम्मान प्रकट करते हैं। इस तरह, इस मंत्री ने जनता की परंपरा और संस्कृति के प्रति अपनी अज्ञानता जाहिर की। विशाल बस्तर में अत्यंत प्राचीनतम आदिवासी 'अबूझमाड़' के निवासी ही हैं, यह लोगों की आम धारणा है। यदि इन लोगों की परंपरा को प्रामाणिक माना जाए, तो सचाई यह है कि यहां के लोग एक-दूसरे से मिलने पर 'जुहार' कहते हैं, न कि 'राम-राम'। राम भक्ति में पूरी तरह डूबे हुए महंत के खयालों से उपजा पगलापन के अलावा, यह कुछ भी नहीं है।

मौजूदा लुटेरे शासक वर्गों की कथनी और करनी में काफी फर्क है, यह बात कथित रूप से आदिवासियों के विकास के लिए किए जा रहे प्रयासों की तुलना 1952 के नेहरू के `पंचशील' के नियमों से करने से आसानी समझी जा सकती है।

1. जनता अपने स्वाभाविक तरीके से अपना विकास कर लेगी। हमें उन पर कुछ भी थोपने से बचकर रहना चाहिए। उनकी परम्परागत कलाओं और संस्कृति को प्रोत्साहित करने की हर संभव कोशिश करनी चाहिए।
2. जंगल और जमीन पर आदिवासियों के अधिकार का सम्मान करना चाहिए।
3. हमें आदिवासियों के अपने दल गठित करके प्रशिक्षित करना चाहिए जोकि प्रशासन और विकास का काम कर सकें। हालांकि शुरू में बाहर से कुछ तकनीशियनों की जरूरत निश्चित रूप से पड़ेगी। लेकिन हमें आदिवासी क्षेत्रों में बहुत ज्यादा बाहर के लोगों को भेजने से बचना चाहिए।
4. हमें योजनाओं की अधिकता से इन इलाकों में ज्यादा प्रशासनिक हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए या उन पर हावी नहीं होना चाहिए। बल्कि हमें उनकी अपनी सामाजिक तथा सांस्कृतिक संस्थाओं के जरिए काम करना चाहिए, उनका विरोध नहीं करना चाहिए।
5. हमें मनुष्य की प्रकृति में आए विकास के गुण से नतीजों का आकलन करना चाहिए, न कि खर्च की गई रकम के आंकड़ों से।

('*आदिवासियों के सामाजिक शासन की तैयारी की समस्याएं*' - एल्विन द्वारा पेश सेमिनार पर्चे से)

पंचशील के माध्यम से रोशनी में आए उपरोक्त न्यूनतम बातों की भी जनता मांग रही है।

क्या जनता को ऐतिहासिक तथ्य चाहिए? या पुराण?

एक प्रमुख कवि का कहना है कि इस सवाल का कि एक राष्ट्र के आगे बढ़ने में इतिहास मदद करेगा या पुराण, जवाब पुराण देने वाला शायद `भारतीय' ही हो सकता है। वास्तविक इतिहास को लिखित रूपों में संग्रहीत करना भारतीय नहीं जानते जैसे अन्य पूर्वी देशों में जानते हैं। इसलिए एक विचित्र सी स्थिति बनी हुई है। पश्चिम के लोग हमारी शुरूआती संस्कृति को हमारे वैदिक साहित्य में देखते हैं, मध्य एशियाई हमारे गणित, हमारे खगोल विज्ञान में और हमारे चिकित्सकीय विज्ञान में हमारी संस्कृति को देखते हैं, तो हम हैं कि उसे हमारे रामायण में देख रहे हैं। दुनिया को दिखाते हुए गर्व महसूस कर रहे हैं। इस 21वीं सदी में भी हमारे `नेता' इसे भावी पीढ़ियों तक ले जाने को उत्सुक हैं।

ये आधुनिक पौराणिक चिल्ला-चिल्लाकर प्रचार कर रहे हैं कि रामायण ऐसी तमाम सच्चाइयां हैं जोकि हमारे जीवन के लिए उपयोगी हैं। इससे भी अजीबोगरीब बात यह है कि इन पुराणों को जस की तस नहीं रहने दिया जा रहा है। ऐसे भाग भी जो रामायण में शामिल नहीं किए गए हों, पौराणिक और उत्साही जोड़ते जा रहे हैं। उन पुराणों के हालात और समय को तोड़-मरोड़कर बताते हुए आए दिन उन्हें भ्रष्ट बना रहे हैं ताकि भावी पीढ़ियों को इतिहास के बारे में वैज्ञानिक समझ बिलकुल ही न मिले। उदाहरण के लिए `आज के' रामायण में सात मंजिले भवन का जिक्र है। लेकिन हरप्पा सभ्यता की समाप्ति के बाद हजार सालों तक हमारे देश में कोई नगर ही नहीं बन पाया था। सात मंजिला इमारतों, सीता जी की रेशम और नाइलोन की साड़ियां क्या रामायण के समय की थीं? या उस समय की संस्कृति की जबकि रामायण लिखा गया था? ऐसे माहौल में जबकि राम और सीता को देवता

बनाकर, उन्हें आकर्षक रूप देकर, टी.वी. के पर्दे पर भी उतारकर ढेरों पैसे कमाते हुए ही दूसरी ओर जनता में धार्मिक अंध-राष्ट्रवाद फैलाने वाले तथाकथित `सभ्य' नागरिकों की करतूतों का सिलसिला बेअंत चल रहा हो, पुराणों में इतिहास को `खोजने' का प्रयास रेगिस्तान में पानी खोजने के बराबर है।

रामायण किन वर्गों की सेवा करता है? क्या नीति सिखाता है?

हालांकि इस बात का कोई सबूत नहीं है कि भगवान ने मनुष्य को बनाया, परंतु इसके कई प्रमाण हैं कि मनुष्य ने भगवान को बनाया। एक समय था जबकि मानव समाज भगवान के बिना ही चला करता था।

जब तक मनुष्य गणों में गण-नियमों का पालन करते हुए जिए थे, तब तक उन्हें न किसी धर्म की और न ही आज की तरह के भगवान की जरूरत पड़ी थी। क्योंकि वे दुख-सुख बराबर भोगते थे। उस समाज के किसी भी व्यक्ति को इसकी न जरूरत थी और न ही मौका था कि वह दूसरे की मेहनत की लूट करके यह कहे, "मेरा जन्म तुमसे श्रेष्ठ है।" हालांकि वह साम्यवादी समाज था, पर परिणत समाज नहीं था।

सामाजिक विकासक्रम ने गण-जीवन को तोड़ने की जरूरत सामने लाई। इस जरूरत की वजह उत्पादन की ताकतों में हुई बढ़ोत्तरी। इस चरण की समाप्ति हुई कि जिसकी मेहनत से वही जिए। एक की मेहनत से चार मनुष्यों की पूर्ति कर सकने वाली उत्पादन की ताकतें मनुष्य के काबू में आ गए। समाजशास्त्रियों के इस अनुमान से भी हम परिचित हैं कि जहां आहार को इकट्ठा करने के चरण में एक ही मनुष्य का गुजारा होता था, वहीं पशु-पालन से तीन मनुष्यों के जीने की स्थिति आई और खेती-किसानी से सौ मनुष्यों को पाला जा सकता है। उत्पादन की ताकतों में हुई बढ़ोत्तरी से वर्ग-समाज का जन्म हुआ। शोषक और शोषित लोग एक ही समाज में रहने लग गए। उस तरह का वर्गीय विभाजन गण-जीवन से पूरी तरह अलग है।

वर्ग-समाज में अलग-अलग कबीलों को स्थान है। लेकिन सभी का स्थान बराबर नहीं है। शोषकों का स्थान ऊपर और शोषितों का नीचे रहता है। इस नाइंसाफ़ी के बावजूद वर्ग-समाज गण-जीवन से विकसित था। इसके साथ ही वर्गीय व्यवस्था में व्यापक समाजों के गठन का मौका मिला जिनकी उन्होंने कल्पना ही नहीं की थी। बड़े राज्यों और साम्राज्यों का अस्तित्व में आना शुरू हुआ।

जंगली गणों के मुखियाओं ने व्यापार के जरिए तथा भाड़े पर जंगें करके काफी सम्पत्ति कमाई। लेकिन गण के नियमों के मुताबिक सारी संपदा गण की साझी संपदा मानी जाती है। उसे हड़पने के लिए मुखियाओं को भी जाति-धर्म का पालन करना होगा। तब कौन कर सकता था? ब्राह्मणों को ही आना था और `हिरण्यगर्भ' नामक रस्म पूरी करनी थी। मुखिया को सोने के एक बर्तन में बिठाकर मंत्र पढ़ा करते थे। वही बर्तन गर्भ माना जाता था। उस बर्तन से मंत्रों के उच्चारण के बीच ऊंची जाति के व्यक्ति के रूप में `पुनर्जन्म' लेता था। ब्राह्मण उस बर्तन रख लेते थे और मुखिया के पूर्वजों को किसी पुराण में `जोड़' देते थे, या फिर उसका नाम किसी पुराण में शामिल कर देते थे। कुछ गण-मुखिया ब्राह्मण भी बन चुके हैं। किसी भी आदिम जाति में आसानी से पैठ कर सकना ब्राह्मणवाद के लिए उपयोगी साबित होता आया है। कश्यपों ने आदिमवासियों को अपनी शाखा में शामिल करके जिन-जिन को वंश-नाम नहीं हैं, उन्हें अपने गोत्र प्रदान किए। अधिकांश राजपूत अपने पूर्वजों की जाति के नहीं हैं, बल्कि आदिम कबीलों के हैं। हालांकि ब्राह्मणों ने उन्हें या तो सूर्यवंशी या फिर चंद्रवंशी राजाओं में तब्दील करके क्षत्रिय बना डाला। (बेहतर होगा कि दिग्गी राजा भी अपने इतिहास में झांकें) इस तरह के फेरबदलों से लोग संकुचित गण-जीवन से बाहर आकर विशाल समाज में कदम रखने लगे।

इस प्रक्रिया का भगवान से गहरा संबंध है। कुछ तबके तो इस सामाजिक शोषण को हमेशा के लिए बर्दाश्त नहीं करेंगे। शोषित जनता को नशा देकर उनके मन को हमेशा के लिए बहलाना होगा। इसके लिए यह सिद्धांत सामने लाया गया कि वर्ग-समाज को मनुष्यों ने नहीं, बल्कि भगवान ने बनाया। `भगवान' से यह कहलवाया गया कि `चातुर्वर्णम माया स्पष्टम'। मानवजाति के विकास इन ऐतिहासिक तथ्यों को ताक पर रखकर, आज, हमारे शासक बस्तर के आदिमवासियों में रामायण को घुसा रहे हैं। इससे वे यह धमकी देना चाहते हैं कि चूंकि यह समाज भगवान की सृष्टि है, इसलिए इसे बदलने की कोशिश नहीं करनी चाहिए, यदि आतंकवाद (नक्सलवाद!) के भ्रम में पड़ेंगे, तो हमें विनाश झेलना पड़ सकता है।

मानवजाति के विकासक्रम में उत्पादन की ताकतों में हुई बढ़ोत्तरी से लोहे के आविष्कार के बाद कृषि का विस्तार हुआ। जंगलों का अंधाधुंध उन्मूलन करके जमीनों को खेती योग्य बनाया गया। उससे राज्यों के विस्तार के तहत हजारों की संख्या में गांव बस गए। इस सिलसिले में जंगलों में जी रहे आदिवासियों को युक्ति से या धमकी से काबू करके कृषि समाजों में शामिल किया गया। चातुर्वर्णीय व्यवस्था ने उन्हें शूद्र एवं पंचम का नाम दिया। जो लोग इस प्रक्रिया से काबू में नहीं आए थे, उन्होंने और भी भीतरी जंगलों में जाकर शरण लेकर अपने वजूद को बनाए रखा। जंगलों को बड़े पैमाने पर काटकर काश्त के काबिल बनाई गई जमीनों को `सीता' जमीनें कहा जाता था। `महाभारत' की कहानी के जानकारों को खाण्डव वन के दहन के बारे अलग से बताना नहीं पड़ता। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि मानवजाति के विकासक्रम में जंगलों को जलाकर खेती करने की एक दशा हर जगह गुजरी है। खाण्डव वन के दहनकाण्ड से हुए कुछ जंगली कबीलों के उन्मूलन के बाद हुई सभा ही मयसभा थी। मयसभा के बारे में बताए गए तमाम चमत्कार महाभारत के लेखकों की दिमागी उपज के अलावा कुछ भी नहीं है। मर्यादा पुरुषोत्तम राम भी कृषि समाजों के विस्तार के उस लंबे दौर के किसी एक कबीले का आम आदमी ही हो सकता था, पहले इस सच्चाई को स्वीकारना होगा। बाद में यह देखें कि राम को भगवान क्यों बनाया गया और राम की कहानी के जरिए किस नीति को

सिखाना चाहते हैं। जंगली युग और असभ्य युग कई हजारों सालों तक चले थे और हर कदम क्रान्तिकारी बदलावों से गुजरे थे। उस दौरान मानवजाति को जिन संघर्षों से गुजरना पड़ा होगा उनकी अब हम कल्पना भी नहीं कर सकते हैं। सभ्य युग के शुरू हुए ज्यादा से ज्यादा 3-4 हजार साल ही हुए हैं। इस विकासक्रम के बारे में वैज्ञानिक दृष्टिकोण से छात्रों को सिखाने में असमर्थ सरकार इन तथ्यों को छुपा रही है कि राम और कृष्ण इसी दौरान पैदा हुए थे। वह राम को भगवान बनाकर, राम की कहानी को प्रकाशित करके जनता को नशे में रखना चाहती है ताकि अपना उल्लू सीधा किया जा सके।

मानवजाति के विकासक्रम में आर्यों और अनार्यों का इतना मेल-जोल हो चुका है कि आज उन्हें निश्चित रूप से अलग करके दर्शाना कठिन है। परन्तु इलाके के आधार पर इतिहास का ब्यौरा दिया जा सकता है। वैदिक युग के आर्यों का एक धर्म नहीं था। बाद के समय में जो धर्म व्याप्ति में आया वह था ब्राह्मण धर्म। बाद में, ईसा पूर्व 10-9वीं सदियों से वही हिन्दू धर्म के रूप में प्रचलित होने लग गया। इसका आधार आध्यात्मिकवाद है। ईसा पूर्व 6वीं सदी तक बौद्ध धर्म ने ब्राह्मण धर्म से टक्कर ली थी। कुछ हद तक जैन धर्म ने भी। ब्राह्मण धर्म की तरह, ये दोनों धर्म भी गण-शासन के जीवन से ही पैदा हुए थे जो कि जाति-व्यवस्था से अनजान था। इसी तरह शैव, वैष्णव, सिख जैसे अनगिनत धर्म चातुर्वर्णीय व्यवस्था का मुकाबला किए बिना हिन्दू समाज में समा सके। कुछ धर्म अलग समुदायों के रूप में अपने अस्तित्व को बनाए रखने में सफल हुए थे, जबकि कुछ अन्य `छिटफुट' धर्म हिन्दू धर्म की कुछ विशेष जातियों के तौर पर शामिल हो गए। इसके अलावा, 712 ईसवीं में सिंध प्रांत पर अरबों का आक्रमण हुआ था। ये हमारे देश में आने वाले पहले मुसलमान थे। उन्होंने सिंध के राजा दाहर को पराजित करके कश्यपों को इसलाम में शामिल किया। अरबों के बाद तुर्कों ने आक्रमण किए। इससे इसलाम धर्म देश में तेजी से फैल गया। मुगलों का शासन तब तक चला जब तक कि अंग्रेजों का शासन शुरू नहीं होता। अंग्रेजी शासन के दौरान भारत में ईसाई धर्म फैल गया। उपनिवेशी शासन के बाद, 1947 से धर्मनिरपेक्षता की आड़ में फिर से हिन्दू बनाने को ठाने हुए संघ परिवार की हिन्दू साम्प्रदायिकतावाद, विशेषकर पिछले दो सालों से चरम पर पहुंच गया है। "मानवजाति के इस लंबे इतिहास में हम कभी किसी धर्म के काबू में नहीं गए थे, हम अपने ढंग से जीने वाले हैं", कहकर आज भी गर्व महसूस करने वाले लोगों को भारत का `हिन्दू राज' बर्दाश्त नहीं कर सक रहा है। रामायण को उन पर थोपने के पीछे साजिश यही है कि उन्हें हिन्दुओं में तब्दील किया जाए और उन्हें जनेऊ से बांध दिया जाए।

"चरितम रघुनाथस्य शतकोटि प्रविस्तरम"

भले ही यह कहना अतिशयोक्ति होगा कि दस करोड़ रामायण हैं, लेकिन यह तो झूठ नहीं है कि कई रामायण हैं। रामायण की जरूरत बहुत कम लोगों को है। उनमें भी अधिकांश लोगों को वाल्मीकी के रामायण प्रामाणिक है। आध्यात्मिक चिन्तन करने वाले तेलुगु लोगों को आध्यात्म रामायण, तमिल लोगों को कंब रामायण हैं, जबकि कन्नड के लोगों को कुमारा वाल्मीकी अलग से है। बौद्धों के लिए बौद्ध रामायण अलग से है। ये सभी रामायणों में वाल्मीकी के रामायण से कुछ भिन्नताएं हैं। आदिवासी बहुल मध्यप्रदेश में जहां के अधिकांश लोगों की मातृभाषा हिन्दी नहीं है, लोगों पर हिन्दी को राजभाषा के तौर पर थोपते हुए तुलसी रामायण को प्रकाशित करने के पीछे भाषाई आधिपत्य की भावना को नकारा नहीं जा सकता। इतने रामायणों के रहने के चलते सुनने वाले श्रोताओं और पढ़ने वाले पाठकों को यह शंका होने में कोई आश्चर्य नहीं है कि `राम को सीता क्या लगती थी।' बौद्ध रामायण के मुताबिक राम, सीता और लक्ष्मण दशरथ की महारानी की संतानें थे। यानी सीता राम और लक्ष्मण की बहन थी। महारानी के मरने के बाद दशरथ ने दूसरा विवाह किया और उस पत्नी से भारत का जन्म हुआ। पुत्र संतान होने से हुई खुशी से दशरथ ने भरत की मां को वरदान मांग लेने को कहा। उसने वरदान के तहत भरत को राजा के सिंहासन सौंपने की मांग की। राज सिंहासन को लेकर हुई झगड़ों में पिता के कहने पर राम, सीता और लक्ष्मण 12 साल वनवास पर चले गए। बौद्ध रामायण के मुताबिक दशरथ अयोध्या का राजा नहीं था, बल्कि वारणासी का राजा था। बौद्ध रामायण कहता है कि वे लोग वारणासी से हिमालय की तरफ गए थे, न कि दक्षिण के दण्डकारण्य की तरफ। लेकिन वाल्मीकी के रामायण के मुताबिक मृगनयनी मिथिलेश कुमारी का अपहरण दण्डक वनों में ही हुआ था जो उड़ीसा से आन्ध्रा तक फैले हुए हैं। इलाकों की दृष्टि से देखा जाए, तो आर्यों के विस्तार से काफी दूर के लंका के राजा रावण को अनार्य माना जा सकता है। या द्राविड़ भी कहा जा सकता है। दण्डकारण्य में वनवास करने आए लक्ष्मण जो आर्यों की संतान था, को स्थानीय द्राविड़ युवती प्यार किया, तो राम ने बेरहमी से उसके नाक और कान काट दिए थे। इससे लंका का राजा क्रोधित हुआ था, नतीजतन राम को सीता-वियोग झेलना पड़ा। परिणामस्वरूप राम और रावण के बीच युद्ध हुआ था। श्रीलंका के अशोक वन (अब वहां रावण को पूजने वाले सिंहलों की सरकार पर्यटकों को आकर्षित करने के लिए सीता का मंदिर बना रही है।) में रावण द्वारा कैद कर दी गई सीता को छुड़ाने के लिए राम ने वाली को मारकर वानर सेना की सहायता से युद्ध छेड़कर जीत हासिल की। राम ने सीता को अग्निपरीक्षा देने को कहा। सीता ने अग्नि में कूदकर अपना पतिव्रतापन साबित किया। उसके बाद राम ने अयोध्या पहुंचकर राजकारण किया संक्षेप में रामायण की कहानी यही है। यह भी बताया जाता है कि राम ने 16,000 साल राज चलाया। रामायण महज एक कल्पित कहानी के अलावा कुछ भी नहीं है। किसी भी मायने में अब अप्रासंगिक ही नहीं, बल्कि व्यर्थ भी है। इसकी पवित्र ग्रंथ के रूप में आराधना करना जंगली मानसिकता का स्पष्ट संकेत है। ऐसे रामायण को आदिवासियों पर थोपकर सरकार उन्हें क्या सिखाना चाहती है? रामायण में किस तरह के मूल्य छिपे हैं? आदिवासी जनता को सम सामयिक सामाजिक मूल्यों के बजाए रामायण के मूल्य सिखाना क्यों जरूरी हो गया?

दशरथ का बहु-पत्नीत्व, राम का अनार्य महिलाओं की हत्या करवाना, नाक-कान कटवा देना और अमानवीयता से सीता की अग्निपरीक्षा लेना, जाति के बंधन, पितृ-वाक्य का पालन, राज्याकांक्षा से भाइयों के बीच लड़ाई-झगड़े, पादुकाओं से राज-शासन, लंका का दहन से द्राविड़ों को जिंदा जलाना आदि घटनाओं में जनवादी मूल्य तो नहीं हैं, उनकी कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। बाद के समय में सामंती मूल्यों से तथा महिलाओं के प्रति सामंती और फासीवादी रवैए अपनाते हुए लिखवाया गया रामायण अब अप्रासंगिक नहीं तो क्या होगा? इसीलिए हम जनता से आग्रह कर रहे हैं कि ऐसे रामायणों को जला डाला जाए। ग्रामसभा के जरिए जनतंत्र के फलने-फूलने पर यकीन करने वाले दिग्गी राजा को भला `रामराज्य' में किस तरह का जनतंत्र नजर आ रहा होगा!

आज एक ओर राम की कथित जन्मभूमि को बेहद विवादास्पद मुद्दा बनाकर राम के नाम पर रथ-यात्राएं निकाली जा रही हैं। अन्य धर्मों के प्रार्थना स्थलों को मूर्खता से ध्वस्त करके अन्य धर्मावलंबियों की लाशों पर वोटबाजी राजनीति खेली जा रही है। ऐसे में वर्तमान हिन्दू शासक वर्गों द्वारा आदिवासियों का हिन्दूकरण करने की प्रक्रिया के तहत बेहिचक रामायण को थोपना निस्संदेह फासीवादी कदम ही है। जनतंत्र के तमाम प्रेमियों को इसकी निंदा करनी चाहिए।

क्यों आदिवासियों को हिन्दू बदला जा रहा है?

आदिवासियों के अलग अस्तित्व को लुटेरे शासक वर्ग क्यों बर्दाश्त नहीं कर पा रहे हैं? आदिवासी इलाकों पर आक्रमण करके शासन चलाने वाला वर्ग चाहे जिस धर्म का भी हो, आदिवासियों पर अपना धर्म थोपने पर क्यों तुल जाता है? ये सवाल महत्वपूर्ण हैं। मानव समाज के विकासक्रम की शुरूआत में गणों का आविर्भाव हुआ था। कुछ गणों के मिलने से कबीले और उसके बाद वे राष्ट्रीयताओं में परिवर्तित होने का सिलसिला ऐतिहासिक है। उसी तरह वर्ग-वार विभाजन करके देखा जाए, तो आदिम साम्यवाद के बाद बनने वाला पहला वर्ग-समाज दास-स्वामी समाज था। उसके बाद सामंती समाज, पूंजीवादी समाज और समाजवादी समाज - यह ऐतिहासिक भौतिकवाद बताता है। ठोस रूप से, भारत के मामले में देखा जाए, तो यहां पर साम्राज्यवाद ने पूंजीवादी समाज में परिवर्तित होने से बीच में ही रोक दिया जिससे यहां की पूंजीवादी ताकतों की अगुवाई में सामंती ताकतों के खिलाफ `जमीन उसकी जो उसे जोते' के नारे से जनवादी क्रान्ति सफल नहीं हो सकी। यहां की पूंजीवादी ताकतें भी एक ओर सामंतवाद से और दूसरी ओर साम्राज्यवाद से सांठगांठ करके जनवादी क्रान्ति को धोखा देकर दलाल पूंजीपति बनकर उभरीं। इसी को विकृत पूंजीवाद भी कहा जा सकता है। कबीलों का भी यही हाल होने वाला है। अभी तक कबीले कहे जाने वाले आदिवासी समुदायों को सहज विकासक्रम में राष्ट्रीयताओं के रूप में उभरना चाहिए था। लेकिन वर्तमान लुटेरे शासक वर्ग उस सहज परिणामक्रम में रोड़े अटका रहे हैं। क्योंकि उन्हें डर है कि यदि आदिवासी समुदाय राष्ट्रीयताओं के रूप में उभरेंगे तो वे अलग होने के अधिकार सहित आत्मनिर्णय के अधिकार के लिए लड़ेंगे। और यह भी कि उनके नियंत्रण वाले सभी संसाधनों पर अपने संपूर्ण अधिकार का दावा करेंगे जिससे लुटेरों द्वारा जारी शोषण की लगाम कड़ी की जाएगी। जनता की संघर्ष की चेतना बढ़ने से अंतिम रूप से लुटेरे शासक वर्गों के अस्तित्व ही खतरे में पड़ सकता है, इसी को ध्यान में रखकर आदिवासियों का हिन्दूकरण करने की कोशिशें की जा रही हैं। वे हिन्दू बनकर, हिन्दुओं के वर्णाश्रम धर्म में तथा कुत्सित जाति व्यवस्था में समा जाएंगे। इस लुटेरी व्यवस्था में आदिवासी आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक रूप से भी भागीदार बनेंगे। तब लूटपाट को बेरोकटोक जारी रखा जा सकता - इसी मंशा से आदिवासियों का हिन्दूकरण किया जा रहा है।

ई. पू. 2000 के पहले दुनिया की शानदार सभ्यताओं में से एक मानी जाने वाली हमारे देश की सिन्धू घाटी की सभ्यता आर्यों के आगमन के साथ ही खत्म हुई थी। उसके बाद यहां अनेक धर्म पनपे थे। हिन्दू, बौद्ध, जैन, वीरशैव, इसलाम, ईसाई आदि के बारे में हमने ऊपर देखा है। दण्डकारण्य में भी इन सभी धर्मों का व्यापार, धर्म की व्याप्ति या राज्य के विस्तार के बहाने प्रवेश हुआ है। आन्ध्र के वरंगल में काकतीयों के आखिरी शासक प्रतापरुद्र तुर्कों के हमलों में पराजित होकर सन 1323 में मुहम्मद बिन तुगलक द्वारा बंदी बनाया गया था। उसके भाई अन्नमदेव भाग निकला और गोदावरी नदी को पार करके बस्तर के जंगलों में घुस आया। उसने बस्तर के आदिवासी `राजा' को हराकर सत्ता हथिया ली। इनके साथ लाए गए शिव लिंग अभी भी जंगल में यहां-वहां दिखाई पड़ते हैं। आदिवासियों की देवता मानी जाने वाली दन्तेश्वरी (दांतों की देवी या कालिका देवी) इन्हीं की देवी थी। इतिहास में यह भी प्रचार था कि शिव भी पशुपति के नाम से सिंधू सभ्यता के ही थे। वैदिक काल में शिव को रुद्र के रूप में पहचाना गया। वह गणों का मुखिया था। जन जीवन जब गण जीवन में बदल गया था तब शिव महादेव था। शिव को हिमांचल से लेकर सारे देश में हुक्म चलाने वाला भगवान माना जाता है और सबसे लंबी उम्र का। अनार्य गणों का मुखिया रुद्र ने अपना नाम शिव बदलकर हिन्दू त्रिमूर्तियों में से एक की मान्यता हासिल की थी। ये सब जनता के बीच समझौते की नीति को दर्शाते हैं। जिस तरह वर्ग-समाज के सिलसिले में आर्य और अनार्य हिल-मिल गए थे, उसी तरह उनके देवताओं ने भी संबंध और संपर्क बनाया। ब्राह्मण धर्म (हिन्दू धर्म) ने अपने अस्तित्व के लिए जंगली रस्मोरिवाजों से भी समझौता किया। यह जगजाहिर है कि ब्राह्मण धर्म पक्का अवसरवादी धर्म है। इस पुराने इतिहास को छोड़ भी दें, तो पिछले 50 सालों से विभिन्न हिन्दू धार्मिक संस्थाएं विशाल बस्तर के जंगल-पहाड़ों में भी घुसपैठ करके आदिवासियों के अस्तित्व को खतरे में डाल रही हैं। इन धार्मिक संस्थाओं को `राज्य' अपना पूरा सहयोग दे रहा है। कुछ संस्थाएं विदेशी धन से आदिवासियों में हिन्दू धर्म का प्रचार-प्रसार कर रही हैं। अपने धर्म के विस्तार की लालसा में हिन्दू धार्मिक संस्थाएं आदिवासियों पर घोरतम अमानवीयता भी बरत रही हैं। उनके देवताओं की मूर्तियों का अपमान भी किया जा रहा है। कुछ संस्थाएं बड़ी होशियारी से मूर्तियों को चुरा ले जाकर पवित्र गंगाजल (गंगा से दूर रहने वालों को हर जीवनदी गंगा हो सकती

है) से उनकी शुद्धि करके हिन्दू देवताओं के बगल में बिठा रही हैं। नाम बदल रही हैं या जरूरत पड़ने से उनका विवाह करवा रही हैं। जनता के परम्परागत `घोटुलों' को जलाकर `खाण्डव वन दहन' या `लंका दहन' मानते हुए खुशियां मना रही हैं। स्थानीय गोण्डी जनता के मद्यपान का विरोध करते हुए, उनके बर्तन-भाण्डों की तोड़फोड़ की जा रही है। यहां यह बात भुलाई जा रही है कि दरअसल अतीत में ये तमाम आर्यपुत्र सुरापान करने वाले ही थे और बछड़ों के मांस को बड़े चाव से खाते थे। आदिवासियों के मांसाहारी होने पर उन्हें `कतवा' (शूद्र) कहकर नीचा दिखा रहे हैं, लेकिन इस सच्चाई को भूल रहे हैं कि अहिंसा की भावना तभी पनपती है जब खेती-किसानी का स्तर बेहतर हो जाता है।

पहले ही हिन्दुओं द्वारा खुद को आर्य बताकर दंभ भरते हुए `अनार्यों' (स्थानीय आदिवासियों) पर किए जा रहे हमलों के अलावा, पिछले दो सालों से, सरकार बस्तर के जंगल-पहाड़ों में स्थित गांवों और स्कूलों में रामायणों को वितरित करके हिन्दू धार्मिक कट्टरपंथियों के घिनौने कदमों की आग में घी की तरह मदद कर रही है। हिन्दू संस्कृति के फैलाव का नतीजा ही है कि आज विशाल दण्डकारण्य में पीढ़ियों पुराने परम्परागत नामों को भी बदलकर हरेक व्यक्ति के नाम के आखिर में `राम' जोड़ने की एक भ्रष्ट संस्कृति पनप चुकी है। मुख्य रूप से स्कूलों में दाखिला लेने वाले हरेक छात्र के नाम के आखिर में `राम' जोड़ा जा रहा है जोकि हिन्दू विचारधारा के चलते ही जानबूझकर किया जा रहा है। यह प्रक्रिया इतने सुनियोजित रूप से चल रही है कि लोगों को यह सच्चाई दिखाई नहीं पड़ रही है कि इस तरह `राम' जोड़ने के पीछे बड़ी साजिश छिपी है। गोण्डी भाषा में बातचीत करना अशोभनीय माना जा रहा है। हिन्दी, मराठी और छत्तीसगढ़ी में बात करना प्रतिष्ठा का सूचक माना जा रहा है। कुछ लोगों में यह चेतना लुप्त हो रही है कि उनकी मातृभाषा एक मृतभाषा बनने जा रही है। आदिवासियों के घरों में हिन्दू देवताओं की तस्वीरें दीवारों पर छाई जा रही हैं। इस सच्चाई को कि यह सब सरकार की शह पर ही हो रही है, भूल जाने से इन ज्यादतियों और नाइंसाफी के खिलाफ किए जाने वाले संघर्ष का निशाना सही नहीं बैठेगा। दण्डकारण्य के अंतर्गत बस्तर में दिन-ब-दिन बढ़ रहे क्रान्तिकारी आन्दोलन पर चोट करने के लिए `राज्य' के साथ-साथ ये धार्मिक संस्थाएं आगे आ रही हैं। मासूम आदिवासी बच्चों के दिमाग में वेद-अध्ययन के जरिए अनावश्यक कूड़े भरकर, कम्यूनिज़म के खिलाफ भगवा जहर भर दी जा रही है। उनसे संस्कृत के ऐसे श्लोकों को रटाया जा रहा है जिन्हें वे कभी नहीं सुने थे। इसलिए इस बलपूर्वक और अवैज्ञानिक शिक्षा नीति का विरोध करना चाहिए। छात्रों और जनता पर हो रहे सांस्कृतिक हमले की निंदा करनी चाहिए। `रामायण हमें नहीं चाहिए' कहकर जला देना चाहिए।

आदिवासियों का हिन्दूकरण करने की एक और प्रक्रिया है जन गणना, जोकि हर 10 साल में एक बार होती है। देश की आबादी, आबादी में विभिन्न धर्मों के लोगों की संख्या, उनकी मातृभाषा आदि ब्यौरे इकट्ठे करने के लिए कोई भी जन गणना के आंकड़ों पर ही निर्भर करते हैं। इन्हें विश्वसनीय भी मानते हैं। लेकिन इस वर्ग-समाज में हर जगह वर्ग-दृष्टि, वर्ग-न्याय और वर्ग-घृणा ही होती हैं। इस प्राथमिक समझ से लैस होने वाले जन गणना की सीमाओं और उसमें होने वाली हेराफेरियों को जरूर ध्यान में रखते हैं। पिछली जन गणना के आंकड़ों और फिलहाल जारी 2001 की जन गणना के तरीके पर नजर डाली जाए, तो यह बात साफ तौर पर समझी जा सकती है कि इनमें कितनी साजिशें और हेराफेरियां होती हैं। 1961 की जन गणना के मुताबिक देश में 1652 मातृभाषाएं हैं। इनमें एक-चौथाई आदिवासी भाषाओं की है। इनमें गोण्डी भाषा भी शामिल है जिसे लाखों लोग बोलते हैं। लेकिन 1981 तक इन भाषाओं की संख्या 106 तक घटा दी गई। कई भाषाओं को नकारकर शासकों ने करोड़ों लोगों की मातृभाषाओं के साथ नाइंसाफ़ी की। इसके बदले वे कितनी भी कीमत चुकाएं, कम होगी। जहां उन्होंने लाखों लोगों द्वारा बोली जाने वाली भाषाओं को मृतभाषाएं करार दीं, वहीं मुट्ठी भर लोगों की भाषा संस्कृत को ऊंचा दर्जा दिया। स्थानीय जनता की भाषाओं को नकारकर कागजात में अंग्रेजी को महत्व दे रहे हैं। मामला सिर्फ जनता की भाषाओं का नहीं, जन गणनाएं जनता के और उनके कबीलों के अस्तित्व को भी दफन कर रही हैं। जन गणना के दौरान पर्चों में `जाति' के स्थान पर आदिवासियों का कबीला और `धर्म' के स्थान पर `हिन्दू' दर्ज करना अक्षम्य गद्दारी ही होगी। यह सिर्फ बस्तर के आदिवासियों के मामले में नहीं हो रहा है, देश भर में फैले हुए तमाम आदिवासियों के मामले में यही हो रहा है। यह बात गुजरात के आदिवासियों के हालिया संघर्ष से ज्यादा स्पष्ट होती है।

गुजरात के आदिवासी `*अमे वनवासी नथी*' (हम वनवासी नहीं हैं) शीर्षक पर्चे बांट रहे हैं जिसमें कहा गया कि वर्ष 2001 के लिए हो रही जन गणना के प्रति आदिवासियों को ज्यादा सावधानी बरतनी होगी, उन्हें अपने को आदिवासी के रूप में दर्ज करवाना चाहिए। पर्चे में कहा गया कि आदिवासियों को अपने को वनवासी नहीं बताना चाहिए और गर्व से कहना चाहिए कि हम हिन्दू नहीं हैं, आदिवासी हैं। गुजरात के आदिवासियों में कार्यरत समाज-सेवी संगठनों में `गुजरात वनवासी कल्याण परिषद' एक है। संघ परिवार से जुड़े इस संगठन के द्वारा हिन्दू विरासत की प्रशंसा करते हुए, श्रीराम और हनुमान जैसे हिन्दू देवताओं को महिमामंडित करते हुए आदिवासी इलाकों में विस्तृत रूप से बांटे गए पर्चों के खिलाफ ये उक्त पर्चे आए हैं। पर्चे में आदिवासियों ने अपना विरोध जताते हुए कहा कि उन्हें `वनवासी' कहने के पीछे बड़ी साजिश चल रही है, क्योंकि वनोपजों के बंटवारे के समय यह सवाल अहम बन जाता है। उनका कहना है कि आदिवासियों को जंगलों और अन्य संसाधनों से वंचित करने के लिए ही संघ परिवार उन्हें `वनवासी' कहने पर तुला हुआ है। इससे यह तर्क भी दिया जा सकता है कि वनों में रहने वाले सभी वनवासी होंगे, यह जरूरी नहीं कि वे आदिवासी ही हों। पर्चे में यह चुनौती भी दी गई, "आप हमें हिन्दू कहेंगे, तो हमें किस जाति में शामिल करेंगे? शूद्र, वैश्य, क्षत्रिय या ब्राह्मणों में? क्या आप अपनी पुत्रियों को हमारे घरों में बहू बनाकर भेजेंगे?" पर्चे में यह घोषणा भी की गई, "इन वनों में शुरू से जीने वाले हम ही हैं। यहां के नदी-नाले, जंगल-पहाड़, घास-फूस सब हमारे ही हैं।" (6 मई, 2000 के *हिन्दुस्तान टाइम्स* में छपी खबर पर आधारित)

इस मौके पर नीचे के इस विषय *(शेष पृष्ठ 32 पर ...)*

बस्तर का मुक्ति संग्राम ...

महान भुमकाल - 1910

[ब्रितानी साम्राज्यवाद के खिलाफ किए गए बस्तर के मुक्ति संग्राम के अंतर्गत हुए कई विद्रोहों में `महान भुमकाल' बेहद महत्वपूर्ण था। `माड़िया राज' की घोषणा करके 40 दिन तक जनता का शासन चलाने का जबर्दस्त इतिहास रहा उसका। दरिंदों की पाशविक सेनाओं को मार भगाने वाला शानदार विद्रोह था वह। ब्रितानी उपनिवेशक प्रभुओं ने बड़े पैमाने पर सैन्य कार्रवाई छेड़ दी, तो उसे मात देने के लिए बस्तर की धरती पर खून की नदियां बहाई गईं उस महान भुमकाल (क्रान्ति) में। इतने महत्वपूर्ण और शूरतापूर्ण इतिहास रखने वाले महान भुमकाल को भारत के स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास के पन्नों में जगह न मिल पाना शासक वर्गों की बड़ी साजिश है। उस समय के जन योद्धाओं के बलिदानों को याद नहीं करने वाले `भारत के संवतंत्रता संग्राम' को बेमानी कहकर ठुकरा देना चाहिए। उन योद्धाओं की संघर्षमय यादों से नए खून की श्याही से नया इतिहास रचेंगे।

1910 के विद्रोह के महत्व को देखते हुए, हम उसके इतिहास को तीन भागों में प्रकाशित करने जा रहे हैं। इसके तहत मौजूदा अंक में उस विद्रोह के समय के सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक हालात पेश करेंगे। आगामी अंकों में `महान भुमकाल - 1910 : गोण्डी जनता का छापामार युद्ध' और उसके बाद `इतिहास साक्षी है वीरों की कुरबानियां व्यर्थ नहीं होंगी' शीर्षक लेख पेश करेंगे। - संपादकमण्डल]

इतिहासकारों की यह धारणा है कि 11वीं सदी में बस्तर पर नागवंशियों का शासन रहा था। हालांकि इनके शासन की राजधानी `बारसूर' रही, लेकिन कुरसुपाल और चित्रकोट भी इनकी राजनीतिक गतिविधियों के केन्द्र थे। इनका शासन का अंत तब हुआ जब 14वीं सदी में काकतीयों का राजा अन्नमदेव ने बस्तर पर कब्जा किया। अन्नमदेव वरंगल को केन्द्र बनाकर पड़ोसी आंध्र में शासनरत राजा प्रतापरुद्र देव का भाई था जिसे मुसलमान आक्रमणकारियों ने बंदी बनाकर उसके राज्य पर कब्जा किया था, और वह भागकर गोदावरी नदी को पार करके बस्तर के जंगलों में भाग आया था। इसके शासन का केन्द्र मुथोटा था जो कि जगदलपुर से पश्चिम दिशा में स्थित है। हालांकि इसके बाद कई पीढ़ियों ने भी मुथोटा को केन्द्र बनाकर राज किया, लेकिन पुरुषोत्तम देव के जमाने में बस्तर राजधानी बन गया जो कि जगदलपुर से 12 कि.मी. दूर है।

बस्तर के राजघराने में उपजे आंतरिक कलहों के परिणामस्वरूप बस्तर में पड़ोसी राज्यों का दखल संभव हुआ। हालांकि राजा दलपत देव को अपने छोटे भाई की साजिश से हुए मराठों के हमले के चलते राज्य छोड़कर भागना पड़ा, लेकिन जल्द ही उसने सैनिक आक्रमण करके जीत हासिल करके अपनी पराजय का बदला लिया। उसके बाद उसने राजधानी को बस्तर से जगदलपुर बदला जो कि इंद्रावती नदी के दक्षिणी छोर पर स्थित सामरिक शहर है। (अब पर्यटकों को बस्तर एक ऐतिहासिक गांव के रूप में दिखाई देता है, जबकि जगदलपुर अब एक लाख से ज्यादा आबादी वाला शहर है।)

उन दिनों जगदलपुर मात्र 400-500 घासफूस के मकानों वाला शहर था। ईंटों और मिट्टी के गोलों से निर्मित दीवारों पर घासफूस की छतें होती थीं उन मकानों की। अंग्रेजी अफसरों की रिपोर्ट के मुताबिक राजभवन भी घासफूस की छत वाला एक बड़ा मकान ही था। 1856 में अंग्रेजी अधिकारी ई.सी.इलियट के सबसे पहले दौरे तक भी इस राज्य में 100-200 मकान वाले गांव सिर्फ 30-40 ही थे। आज भी विशाल बस्तर के सुविशाल जंगलों में ऐसे कई गांव हैं जो इधर-उधर बिखरे पड़े हैं और महज 10-12 मकानों से ज्यादा नहीं हैं। बताया जाता है कि 1854 तक यहां एक प्रथा थी जिसके अनुसार घर में किसी की मृत्यु हो जाती है, तो उस मकान को ढहाकर नया मकान बनाया करते थे। चूंकि इससे शहरों के विकास में बाधा आ रही थी, इसलिए दीवान दलगंजन सिंह (1853-54) ने इस प्रथा को रोक दिया बताया जाता है। आज भी, दण्डकारण्य की बात छोड़ भी दिया जाए, तो तेलंगाणा के सामंती गांवों में यह पुरानी प्रथा मौजूद है कि जब घर में किसी व्यक्ति का निधन हो जाता है, तो ब्राह्मण से तिथि-नक्षत्र आदि गिनवाकर कुछ माह तक घर खाली करते हैं। इसके अलावा, उन गांवों में ऐसी भी प्रथा है जिसके अनुसार गांवों में किसी अगड़ी जाति के व्यक्ति के घर में गोह घुस आता है, तो ब्राह्मण की बात पर घर छोड़ देते हैं। आज भी बस्तर में कोई व्यक्ति किसी हरे पेड़ से फांसी लगाकर आत्महत्या कर लेता है तो उस पेड़ को जड़ से काट दिया जाता है।

राजा दलपतसिंह की मृत्यु से उनके वारिसों में राज्य-कांक्षा के चलते झगड़े पनपे थे। दुरयवसिंह ने पड़ोसी राजाओं की मदद से सत्ता की बागडोर संभाल ली। मदद देने वाले पड़ोसी राजा जयपुर (उड़ीसा) के राजा ने कोटपाड को कब्जे में लिया, तो नागपुर के मराठा राजाओं ने बस्तर के राजा को एकाएक सामंत राजा के स्तर पर उतार दिया। बाद के अरसे में कोटपाड बस्तर और जयपुर राज्यों के बीच सुलगता विवाद और अनेक संघर्षों का केन्द्र-बिन्दु बना रहा। यह बात 1870 की थी।

1854 में हुए दूसरे आंग्ल-मराठा युद्ध के बाद नागपुर अंग्रेजों के सीधे शासन में चले जाने के परिणामस्वरूप बस्तर राज्य पर भी अंग्रेजों का कब्जा हो गया बताया जा सकता है। इस तरह बस्तर ब्रिटिश-इंडिया के शासन का हिस्सा बन गया। हालांकि

1856 में ही रायपुर के तत्कालीन कमिशनर वी.सी.इलियट ने पहली बार बस्तर का दौरा किया, लेकिन अंग्रेजों के जमाने में बस्तर का शासन 1-4-1882 तक छत्तीसगढ़ डिवीजनल कमिशनर के मातहत सिरोंचा में पदस्थ अप्पर गोदावरी कमिशनर के तहत चलता रहा। उसके बाद उड़ीसा के कलाहंडी स्थित भवानीपट्टनम के प्रशासनिक मामलों के अधीक्षक के तहत कुछ समय चलता रहा। उन दिनों अंग्रेजों के मन माफिक बस्तर का शासन चला था। आज दिल्ली और भोपाल में बैठे शासकों के रहमोकरम पर बस्तर का शासन चल रहा है। पराए आक्रमणकारियों के हमले से बस्तर में `जनता' का शासन समाप्त हो गया, तो पराए लोगों के शासन को खत्म करने के लिए बस्तर की जनता लगातार संघर्षरत है। उस संघर्ष का जीवंत सबूत है वर्तमान दण्डकारण्य संघर्ष।

अब यह देखें कि 1854 तक बस्तर में शासन किस तरह चला करता था। राजा के नीचे `प्रधानमंत्री' (दीवान) हुआ करता था और उसके मातहत राज्य कई सब डिवीजनों में बंटा हुआ करता था। एक-एक सब डिवीजन का एक-एक `कामदार' (मैनेजर) रहा करता था। इसे भत्ते के तौर पर निश्चित अनाज के अलावा 10 रुपए का वेतन भी दिया जाता था। इसके मातहत पूरे सब डिवीजन में `नेगी' रहा करते थे जिनके जिम्मे कुछ गांव दिए जाते थे। `नेगी' के सहायक के रूप में `हिकमी' रहा करते थे। `हिकमी' के मातहत गांव के मुखिया होते थे जो सीधे तौर पर कर वसूलते थे। इन्हीं ताकतों को गांवों पर और जनता पर पूरी पकड़ होती थी। इनकी ताकत को इस तथ्य से पहचाना जा सकता है कि कल-परसों तक दण्डकारण्य में इन्हीं लोगों की तूती बोलती थी और आज भी, उन गांवों में इनका दबदबा कायम है जहां संघर्ष के बीज नहीं पड़े हैं।

राजा
↓
दीवान (प्रधानमंत्री)
↓
कामदार (मैनेजर)
↓
नेगी
↓
हिकमा
↓
मांझी

अंग्रेजों के पहले जमीन कर की वसूली का सरल हिसाब होता था। एक-एक हल पर 8 आने से (0-8-0) सवा रुपए (20 आने) का कर या एक-एक कुदाल पर चार से सोलह आने का कर लगता था। इससे यही स्पष्ट होता है कि तब तक बस्तर में पूरी तरह हलों से की जाने वाली खेती या स्थाई खेती नहीं की जाती थी। आज भी अबूझमाड़ के पहाड़ों में कुदालों से मिट्टी को खोदकर की जाने वाली खेती समाप्त नहीं हुई है।

1863 में दीवान दलगंजन सिंह की मौत के बाद प्रशासन गड़बड़ा गया था। उसके बाद दीवान बना मोतिसिंह अंग्रेजों का भरोसेमंद सेवक था। ऐसे अधिकारियों के माध्यम से जनता पर दिनोंदिन अंग्रेजों के कानूनों का शिकंजा कसता गया। इसी के शासन काल में बस्तर राज्य में पहली बार `भारतीय दण्ड संहिता' पेश की गई। स्टैंप एक्ट के आने से अदालतों की आय बढ़ी। 1865 तक राजा का दर्जा अंग्रेजों की नजरिए से `बड़े नौकर' के दर्जे पर गिर गया था। राजा चाहे किसी भी गुनाहगार के खिलाफ मुकदमा चलाकर सजा दे सकता था बशर्तेकि कमिशनर की इजाजत हो। मोतिसिंह के समय में ही अंग्रेजों ने मवेशियों के चारे पर कर लगाना 1866 में शुरू किया। पहली बार बस्तरियों का नाता बाहरी दुनिया से और व्यापार से जोड़ने वाले बंजारों के व्यापार पर भी आयात कर लगाए गए थे। इन बंजारों के बारे में जाने माने इतिहासकार कोशांबि का मानना है कि भारत के राष्ट्रीय पूंजीपतियों के विकास में बंजारों का बड़ा महत्व था। मुगलों के शासन में ये बंजारे सेना की छावनियों में ऊंटों पर माल पहुंचाया करते थे, लेकिन अंग्रेजों के आगमन से बंजारों का विकास गुमराह हो गया। इस तरह ऐसे कई रास्ते अस्तित्व में आए जिनसे राजकोष में अतिरिक्त आय जुड़ती थी। ये सब जनता को प्रताड़ित करने वाले लुटेरे रास्ते ही थे। ज्यों-ज्यों ये शासक जनता में बदनाम होते गए, उनकी जगह नए दीवानों से भरना भारत के शासन के मामले में अंग्रेजों को बांए हाथ का खेल-सा था। इसी के अंतर्गत 1870 तक गोपिनाथ ने मोतिसिंह की जगह ली। इसने बुनकरों पर भी कर लगाया। साथ ही, दारू भट्टियों की नीलामी करके आबकारी शुल्क की शुरूआत की। जगदलपुर के सूदखोरों और व्यापारियों से `पंधारी' कर वसूलना आरंभ हो गया। रीवा से आए मैहित्री ब्राह्मण राजगुरु लोकनाथ को राजा के दरबार में पूजारी नियुक्त किया गया। अन्नमदेव से अंग्रेजों तक बस्तर का शासन करने वाले राजाओं ने अपनी जरूरतों के लिए भिन्न परंपरा के और भिन्न वर्णों के लोगों को बाहर से लाकर जगदलपुर में बसाया।

1876 के बाद अंग्रेजों ने कई और `सुधार' किए ताकि समाज के सभी आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्रों में लूट को तेज कर सकें। हरेक सुधार को `जन कल्याण' का ठप्पा भी लगाया। अंग्रेजों को अच्छी तरह मालूम है कि चाहे कोई भी कदम उठाए जाए, उस पर इस तरह का ठप्पा न लगे, तो जनता से विद्रोह का खतरा हो सकता है, और यह कि जनता को दिग्भ्रमित करने के लिए भी ऐसा करना जरूरी है।

1) उन्होंने कर वसूली के लिए भू व्यवस्था की नीति अपनाई।
2) राज्य भर में सड़कों का निर्माण शुरू किया ताकि अपने लुटेरे राज्य यंत्र को तेजी से भिजवाया जा सके।
3) जंगल संपदा पर नजर गड़ाए हुए उपनिवेशी शासकों ने आदिवासी जनता को जंगलों से खदेड़कर नए कानूनों की रूपरेखा तैयार की।
4) न्यायपालिका और पुलिस अमले को अपने शासन के अनुरूप ढाला।
5) अपने शासन के लिए उपयुक्त ढंग से चपरासियों को

तैयार करने के लिए स्कूलें खोलीं।

6) जन कल्याण के नाम पर अस्पताल खोल दिए।

उपरोक्त क्षेत्रों में किए गए `सुधारों' के फलस्वरूप जंगल में अंग्रेजी अधिकारियों और सरकारी एजेंटों की तादाद बढ़ गई और वे जनता पर टूट पड़ने लग गए। स्कूल के चपरासी-शिक्षक से लेकर दीवान तक सब अलग-अलग स्तर पर जनता की लूट करने वाले ही थे। जंगलों में अपने झुण्डों के साथ घूमने वाले अधिकारियों की सेवा करने के लिए जनता को खून पसीना करना पड़ता था। इस भयंकर लूट से जनता में क्रोधाग्नि भड़कना स्वाभाविक था। उन पराए उत्पीड़कों को स्थानीय जनता में बगावत का परचम उठाने से रोक पाना असंभव था। इन सभी की चरम सीमा ही 1910 में महान भुमकाल के रूप में फूट पड़ी। उस समय के शोषण को और भी गहराई से देखें।

1891 में तीन तरह के हितों के नाम पर नए वन कानून बनाए गए।

1. वन संपदा का संरक्षण
2. वनों से मिल रही आय में इजाफा करना, विशेषकर लकड़ी, शहद, मोम, लाख, हर्रा, गोंद आदि लघु वनोपजों की बिक्री से आय जुटाना।
3. आदिवासियों के हितों की रक्षा करना।

बस्तर, जो कि 70 प्रतिशत जंगलों से भरे और जिसकी दो-तिहाई आबादी चलित खेती पर निर्भर है, में जी रहे आदिवासियों की जिंदगी पर नए वन कानून कुठाराघात सिद्ध हुए थे। जनता का सब कुछ छिन-सा गया था। 1896 में हांट बतौर स्टेट वन अधिकारी आया था। और ब्लन्ट को आरक्षित वन अधिकारी नियुक किया गया था। जंगलों के वर्गीकरण से आरक्षित वनों में चलित खेती पर पाबंदी लग गई। 1178 वर्ग मील के जंगलों को आरक्षित घोषित किया गया। अत्यंत प्राचीनतम तरीकों में खेती करने वाले आदिवासियों को सरकारी हिसाब से सिर्फ पौने दो एकड़ खेती योग्य जमीन आवंटित कर 8 आने का कर लगाया गया था।

नारायणपुर में एक लकड़ी डिपो खोली गई थी। दक्षिण में कोंटा लकड़ी व्यापार का एक प्रमुख केन्द्र बना था। गोदावरी नदी के तट पर 15 X 10 वर्ग मील में जंगल काटने पर पाबंदी लगाई गई थी। जंगल में जमा की गई लकड़ियों को समुद्र के रास्ते अपने देश ले जा सकने के लिए अंग्रेजों ने राजमंड्री में एक और लकड़ी डिपो खोली। अंग्रेजों के जमाने में स्थापित निजी रेलवे कंपनियों के लिए अंतागढ़ से साल के लट्ठे ले जाए गए थे। 1897-98 में अकेले दक्षिण-मराठा रेलवे को 65 हजार साल के तख्ते बेचे गए।

अंग्रेजी सरकार ने वनोपजों की खरीदी पर भी कब्जा किया। जंगल में रह रहे लोगों पर विनिमय कर के तौर पर 2 आने प्रति मकान आदिवासियों के लिए और 3 आने प्रति मकान गैर-आदिवासियों के लिए तय किया गया और जनता के लकड़ी, घासफूस और वनोपजों के संग्रहण को सीमित कर दिया गया। जंगल पर हर तरह से मालिकाना कायम करने के बाद, जहां 1907 में अंग्रेजों को 85,602 की आमदनी हुई, वहीं एक साल के अंदर 1,10,384 रुपए तक बढ़ी। इससे अंदाजा लगाया जा सकता है कि शोषण कितना बढ़ा होगा।

भू व्यवस्था तैयार की गई। खालरे बनाए गए। सभी गांवों में जमीन की जांच शुरू हो गई। पहले 1904 तक जगदलपुर तहसील में सात साल की अवधि में भू व्यवस्था पूरी कर दी गई। गांवों के मांझियों की मदद से जमीन के ब्यौरे इकट्ठा करके कर वसूलने वाली अंग्रेजी सरकार ने सिलसिलेवार सुनियोजित कर नीति पेश की।

एक हल पर 12-15 एकड़ जमीन मानी गई। 5 से $7^1/_2$ कंडी धान की बोवाई (एक कंडी = 20 पायली; 1 पायली = $1^1/_2$ किलो) के अनुमान से नया कर रु. 4-8-0 से रु. 8-4-0 निर्धारित किया गया। इसके पहले 4 रु. से 6 रु. का कर लगता था। भू व्यवस्था के पहले सही आंकड़े न होने के चलते 1877 में 27,406 रु. का कर वसूला गया था। परन्तु जमीन के सही आंकड़े तैयार करने के बाद 1904 में 1,30,000 रु. की कर वसूली का अनुमान लगाया गया और वास्तविक वसूली 93,000 की हुई। उस समय बस्तर राज्य की पांच तहसीलों - जगदलपुर, कोण्डागांव, अंतागढ़, बीजापुर और कोंटा में से सिर्फ जगदलपुर में ही जमीन का हिसाब पूरा हो चुका था जिससे 6 गुना कर ज्यादा वसूला जा सका। सभी तहसीलों में यह काम पूरा होता, तो न जाने अंग्रेजों की संपत्ति कितने गुने बढ़ जाती। लेकिन `महान भुमकाल' ने उस पर रोक लगाई।

अबूझमाड़ क्षेत्र भी शीघ्र भू व्यवस्था के तहत लाया गया। यहां पर उस पर व्यक्ति, जिसकी उम्र 16 से ज्यादा साल की हो, पर रु. 1-8-0 से 2-0-0 का व्यक्तिगत कर वसूलना शुरू हो गया। जीना ही अपराध बनकर अंधाधुंध कर लगाते जा रहे थे, तो माड़ क्षेत्र के कुत्तुल जैसे गांवों में असंतोष की आग सुलगती गई।

अंग्रेजी सरकार ने शराब को अपने नियंत्रण में लाकर अपराधों की संख्या में कमी करने की बात कही। आज भी `अपनी' सरकारें भी यही कहानी सुनाती हैं। 1894 तक अलग से आबकारी विभाग बनाया गया और दरोगा नियुक्त किया गया। शराब भट्टियों की नीलामी जोरों पर चलने लग गई। गांजे और अफीम की बिक्री पर सरकार का एकाधिकार कायम हो गया। यह बात इतिहास पर नजर दौड़ाने से ही समझी जा सकती है कि दुनिया भर में जनता का खून चूसने के लिए बदनाम अफीम ने अंग्रेजों के खजाने में कितने करोड़ों पौण्डों का इजाफा किया था और कितने युद्धों का कारण बना था। बस्तर में आयात होने वाली अफीम और गांजे के लिए रायपुर केन्द्र था। 1901 में 59,398 रु. की रही आबकारी आमदनी 1908 तक लगभग दुगुनी, 93,606 रु. की हो गई। परंपरागत शराब पर सरकारी कानून से पाबंदी लग गई और शराब में पानी मिलाना धंधे का हिस्सा बन गया।

1892 में छत्तीसगढ़ के डिवीजन आयुक्त फ्रेसर ने तब तक सरकार को मिली उन सारी रिपोर्टों को जिनमें बस्तर में सड़कों का निर्माण असंभव माना गया था, रद्दी के टोकरे में डालकर सड़कों का निर्माण तेज किया। लुटेरे यंत्र को कोने-कोने तक पहुंचाया जा सकने के लिए राज्य भर में सड़कों का निर्माण किया गया।

पड़ोसी राज्यों तक सड़कों का निर्माण फैलाया गया। 1892-1908 के बीच इन सड़कों ने आदिवासी बस्तियों को जंगलों में बांध दिया। 1898 में रायपुर-जगदलपुर सड़क का निर्माण पूरा हो गया जो कि 1904 तक कोंटा तक, यानी 600 कि.मी. बढ़ा दी गई। इस राजमार्ग के निर्माण का `श्रेय' अंग्रेजों को ही जाता है। 1904 तक जगदलपुर-चांदा सड़क का निर्माण 144 मील पूरा हो गया। 1899 तक ही जगदलपुर-कोटपाड-जयपुर सड़क बन गई। कोण्डागांव-नारायणपुर-अंतागढ़ सड़क 1907 तक बन गई जिसे लहारडोंगा होते हुए राजनांदगांव तक लंबाया गया। इन सड़कों के निर्माण में मुख्य रूप से बाहर के मजदूरों ने ही भाग लिया।

1908 तक धमतरी-जगदलपुर डाक संचार पूरा हो गया ताकि अंग्रेजों को स्थानीय अधिकारियों से रिपोर्टें एवं संदेश तुरन्त पहुंचाने में सुविधा हो। एक दशक के अरसे में, 1892-1901 तक इस विभाग ने भी अपनी आमदनी में दुगुनी बढ़ोत्तरी की - 54,000 रु. से 1,26,000 रु. तक बढ़ी।

अंग्रेजों ने लूट-खसोट को बेरोकटोक जारी रखने के लिए कानून और व्यवस्था को बनाए रखने के बहाने पुलिस अमले में सुधार किए। एल.जे. फागन नामक अधिकारी ने पुलिस में अनुशासन और मनोबल बढ़ाने के लिए विशेष प्रयास किया। 1891 से 1908 के बीच यह सुधार कार्यक्रम जारी था। फिर 100 साल बाद, अब दण्डकारण्य के संघर्षों को कुचलने के लिए यहां के पुलिस वालों को उसी अंग्रेजी स्कॉटलैण्ड यार्ड पुलिस द्वारा प्रशिक्षण दिलवाने का निर्णय महज इत्तेफ़ाक तो नहीं हो सकता। बहरहाल, 1904 में कुल 297 आरक्षकों और 27 हवलदारों ने अंग्रेजों की सेवा में समर्पित होकर जंगल को और जंगल में रहने वाले आदिवासियों को अपनी बंदूकों के साये में लाया था।

अंग्रेजों ने कोटवारों की व्यवस्था को भी मजबूत बनाया। गांवों में होने वाले अपराधों की सूचना पुलिस को देने की जिम्मेदारी इनकी होती थी। इनकी सेवाओं के बदले एक हल की जमीन (15 एकड़) दी जाती थी।

इतना ही नहीं, जेल प्रणाली का भी उन्होंने अपनी शोषक नीति के अनुरूप ही आधुनीकरण किया। महिला वार्ड खोले गए। 1897 तक ही जगदलपुर जेल में कैदियों की संख्या इतनी बढ़ी थी कि कई मुज़रिमों को तहसीलदार के सामने पेश करके वहीं सजा काटने को बाध्य किया जाता था। जेलों में हैजा आदि महामारियों के फैलने से कई कैदियों की मृत्यु हो गई थी। अंग्रेजों ने मेहनत की लूट करने में जेल के कैदियों को भी नहीं बख्शा। उनसे बागवानी, लिथो प्रेस, कढ़ाई, तेल निकालना, ईंटें बनाना, बांस-लकड़ी के काम आदि के अलावा जगदलपुर शहर में गंदे नालों की सफाई काम भी करवाया जाता था।

इस तरह सभी क्षेत्रों में बढ़ी लूट से अंग्रेजी शासन लोगों की बर्दाश्त से बाहर हुआ था। इस असहनीय शोषण ने लोगों को बगावत का परचम फहराने को बाध्य किया। अंग्रेजों की बर्बरता ने ही `महान भुमकाल' के बीज बोए। 1910 महान भुमकाल बस्तर के संघर्षमय इतिहास में सुनहरा अध्याय था - शूरतापूर्ण कुरबानियों की परम्परा था। ❖

(... पृष्ठ 45 का शेष)

गहरा दुख और वेदना पहुंचाने वाली हमारे छापमारों की इस कार्रवाई से वे आवेश में न आएं तथा हमारे हालात को समझकर हमें माफ करें। इस मौके पर हमारी स्पेशल ज़ोनल कमेटी हमारे छापामारों को राजनीतिक रूप से सुशिक्षित करने की जरूरत फिर एक बार महसूस कर रही है ताकि भविष्य में इस तरह की दुर्भाग्यपूर्ण घटनाओं की पुनरावृत्ति न हो। इस मौके पर हम जनता से संपूर्ण सहयोग देने का आग्रह कर रहे हैं ताकि हमारे छापामारों द्वारा कभी-कभार ही सही, हो रही ऐसी उतालेपन की घटनाओं को रोका जा सके।

निजी तौर पर दण्डकारण्य स्पेशल गुरिल्ला जोन का दौरा करने वाले नए आदमी जो भी हों, उन्हें जरूर समुचित सबूत पास रखना होगा। छापामारों या जनता की मांग पर उन्हें जरूर अपनी पहचान को साबित करने वाले सबूत पेश करने होंगे। स्थानीय लोगों से परिचित होने पर उनका नाम/पता बताना होगा। छापामारों द्वारा की जाने वाली जांच-पड़ताल में अपना सहयोग देना होगा। जरूरी होने पर उन्हें तब तक छापामारों या जनता की हिरासत में रहने को तैयार होना पड़ेगा जब तक कि जांच-पड़ताल पूरी नहीं होती। उन्हें तब तक जनता या छापामारों की हिरासत में रहना होगा जब तक यह साबित नहीं हो जाता कि उनका प्रत्यक्ष या परोक्ष संबंध सरकारी पुलिस विभाग से या किसी विदेशी गुप्तचर संस्था से नहीं है। इसी तरह लुटेरी सरकार के अधिकारियों को भी दण्डकारण्य में अपनाए जाने वाले किसी भी कार्यक्रम के लिए पहले स्थानीय जनता से इजाजत लेनी होगी। वरना, हम चेतावनी दे रहे हैं, इस वर्ष मई/जून में उत्तर बस्तर में जंगल का सर्वेक्षण कर रहे अधिकारियों के एक दल का जो हाल हुआ वही होगा। उस सर्वेक्षण दल के अधिकारियों से जनता ने जो सामग्री जब्त की, अधिकारी यदि मांग करते हैं तो वापस करने के लिए तैयार है। हम उनसे आग्रह कर रहे हैं कि उनकी नौकरियों को सरकार से होने वाले खतरे को ध्यान में रखकर जनता द्वारा लिए गए समुचित निर्णय का सम्मान करें।

हम स्पष्ट कर रहे हैं कि जनता के पक्ष में खड़े होकर जनता के सहयोग से अपने उत्तरदायित्वों को पूरा करने वाले सरकारी कर्मचारियों से छापामारों का बरताव सम्मानपूर्वक और वर्ग दृष्टिकोण से होगा। दण्डकारण्य में विभिन्न विभागों में कार्यरत सरकारी कर्मचारी बिना किसी डर के अपना काम कर सकते हैं बशर्तेकि वे यह ध्यान में रख लें कि उनका हर कदम जनता के प्रति जवाबदेह होना चाहिए। हम उनसे यह भी आग्रह कर रहे हैं कि वेतन के रूप में जनता से मिल रही हमदर्दी का दुरुपयोग न करें; छापमारों के बारे में सरकार द्वारा किए जा रहे निंदापूर्वक प्राचार से प्रभावित न हों। छापामार जनता के सेवक हैं। छापामार जनता के मित्र हैं। छापामार साम्राज्यवाद-सामंतवाद विरोधी ताकतें हैं। छापामार क्रान्तिकारी सैनिक हैं। उनके साथ सहयोग करें, हम सभी तबकों के लोगों से फिर एक बार अपील कर रहे हैं।

भूपति
सचिव,
दण्डकारण्य स्पेशल जोनल कमेटी
भाकपा (मा-ले) (पीपुल्सवार)

वक्तव्य

जनता से अपील

दण्डकारण्य अत्यंत कीमती और विशिष्ट पेड़-पौधों तथा जंतु-समूहों के लिए ऐतिहासिक रूप से प्रसिद्ध क्षेत्र है। पुराणों और इतिहासों में बताया जा चुका है कि यहीं संजीवनी जड़ी-बूटी मिली थी जिससे कई जानें बचाई गई थीं। आज भी कई प्रकार की मूलिकाओं, फलों-फूलों को आयुर्वेद चिकित्सा में इस्तेमाल किया जा रहा है। दण्डकारण्य दुर्लभ वन्य प्राणियों का भी केन्द्र है जोकि फिलहाल लुप्त होने के कगार पर हैं। इस तरह, पशु-पक्षियों तथा पेड़-पौधों के लिए विख्यात दण्डक वनों में रहने वाले आदिवासियों के बारे में विशेष रूप से बताना होगा।

यहां के आदिवासी अतीत में किस प्रांत से आकर बसे थे से लेकर मानव समाज की प्रगति में वे आज किस दशा में जीवन गुजार रहे हैं तक कई सवाल हैं जो इतिहासकारों और मानव-विज्ञानियों को शोध के विषय हो सकते हैं। आदिम मानव अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए झुण्डों में इस भूगोल पर इधर-उधर भटककर दण्डक वन पहुंचने वालों के इतिहास का कई लोग शोध कर रहे हैं। दण्डकारण्य के घने जंगलों में आज भी अपने अनोखे ढंग से जी रहे आदिवासी शोधार्थियों के लिए अच्छा विषय हैं। इनमें भी माड़ के पहाड़ों में जी रहे आदिवासियों का विशेष रूप से जिक्र करना चाहिए मुनाफों पर

अपनी नज़र रखने वाली लुटेरी सरकारें मानव समाज के विकास पर कितनी घोरतम लापरवाही बरतती हैं, इसका अंदाजा आप इस बात से लगा सकते हैं कि वे कुछ इलाकों को किस नाम से पुकारती हैं। लुटेरे शासक वर्ग माड़ के पहाड़ों को आज भी `अबूझमाड़' नाम से बुलाते हैं। इन पहाड़ों में रहने वाली जनता के बारे में बूझने में हुई विफलता से ही यह नाम रखा। मानवजाति की प्रगति के दौरान विभिन्न क्रान्तिकारी दशाओं को सूचित करने वाले चिह्न और अवशेष यहां आज भी मौजूद हैं जोकि उत्साही शोधकर्ताओं को बड़ी प्रेरणा देते हैं। दण्डकारण्य के क्रान्तिकारी भी इन्हें बड़े उत्साह और संकल्प से देखते-परखते हुए मानवजाति के विकासक्रम को मार्क्सवादी दृष्टिकोण से समझने की कोशिश कर रहे हैं। जंगली युग, असभ्य युग और सभ्य युग - मानव समाज को विभाजित करने वाली इन तीन दशाओं में यहां की जनता का विकास किस दशा तक सहज ढंग से हुआ और कहां भटककर विकृत रूप लिया, ये सवाल इनके अध्ययन के प्रमुख अंश हैं। पिछले 3-4 सदियों के दौरान इनका जीवन, खासतौर पर उपनिवेशवादियों के खिलाफ जनता के बहादुराना संघर्ष, हाल के दिनों में, विश्वविद्यालयों के छात्रों के लिए शोध के विषय बने हैं। अन्य शब्दों में कहा जाए, तो आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और सैनिक क्षेत्रों में जनता का ऐतिहासिक द्वंद्वात्मक विकास अध्ययन के विषय के तौर पर है। यह स्वागतयोग्य है।

आज यहां इतनी दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति बनी हुई है कि बड़े संकल्प, समर्पण की भावना से शास्त्र-विज्ञान के क्षेत्र में प्रगति के लिए किए जाने वाले शोध-कार्य बेहद खतरनाक हालात में हो रहे हैं। इसके लिए पूरी जिम्मेदारी लुटेरी सरकारों की है, उनकी बन्दूक-प्रिय पुलिस की है। दण्डकारण्य में पिछले 20 सालों से चल रहे जनता के शौर्यपूर्ण क्रान्तिकारी संघर्ष आए दिन ज्यादा प्रेक्षकों को आकर्षित कर रहे हैं। इस पृष्ठभूमि में उनके अध्ययन में पुलिसिया आतंक बहुत बड़ी बाधा बना हुआ है। दण्डकारण्य में पुलिस द्वारा जारी अंधाधुंध खोजबीन कार्रवाइयों, जनता पर मनमाने हमलों और अत्याचारों के चलते उत्साही लोगों के अध्ययन-कार्य में कई दिक्कतें पेश आ रही हैं। क्रान्तिकारी आन्दोलन की उपलब्धियों से जनता में आए कई प्रगतिशील बदलावों से खफा शासक वर्ग अपने अस्तित्व को बनाए रखनें और शोषण को जारी रखने के लिए अल्पकालिक और दीर्घकालिक सैन्य कार्रवाइयां कर रहे हैं। जनता और छापामारों की गतिविधियों पर ही नहीं, बल्कि जंगलों और पानी के स्त्रोतों पर भी निगरानी बढ़ा दी गई। इसके तहत गुप्त रूप से घूमने वाले जासूसों को भेजने से लेकर हवाई सर्वेक्षण तक के कई कदम उठाए गए।

गुप्त रूप से घूमने वाले जासूसों की गतिविधियां तथा छापामारों का पता लगाने के लिए जंगलों में उनकी गतिविधियां खतरनाक रूप ले रही हैं। ऐसे जासूसों को जब जनता या छापामारों ने पकड़कर पूछताछ की, तो कुछ लोगों ने कबूल किया कि पुलिस ने उन्हें कड़ा प्रशिक्षण और ढेरों पैसा देकर भेजा। कुछ जासूसों ने मुंह नहीं खोला। इनमें स्त्री और पुरुष शामिल हैं। जहां कुछ लोग छापामारों को यह बताकर अपनी जान बचा रहे हैं कि उन्होंने गरीबी और बेरोजगारी से तंग आकर, पुलिस के प्रलोभनों से धोखा खाकर जासूसी काम को मान लिया है, वहीं कुछ और जासूस मुंह खोलने से इनकार करके जान से हाथ धो रहे हैं। इनमें स्थानीय एवं बाहरी लोग शामिल हैं। बाहरी लोग मुख्य रूप से नक्सलवादियों के खिलाफ सरकार द्वारा किए जा रहे जहरीले प्रचार से भ्रमित होकर तथा नौकरी के लालच में इस काम में लग रहे हैं। दूसरी ओर कुछ जन विरोधी स्थानीय लोग क्रान्तिकारी आन्दोलन के खिलाफ खड़े होकर यह काम कर रहे हैं। कई रूपों में आ रहे इन जासूसों से आम जनता के अलावा एक सामाजिक लक्ष्य से आ रहे शोधकर्ताओं को भी परेशान होना पड़ रहा है। ऐसे दुर्भर हालात में जब कोई बाहरी व्यक्ति की छापामारों या स्थानीय जनता से मुलाकात होती है, तो उसे पहचान पाना काफी मुश्किल होता है। बंदियों द्वारा दी जाने वाली जानकारी ही एक मात्र स्त्रोत हो रही है जिससे सच्चाई का पता लगाया जा सके। ऐसे हालात में निर्दोष लोगों की भी जानें ली जाने वाली घटनाएं घट सकती हैं।

इस वर्ष के फरवरी माह में संजीव शुक्ल नामक युवक ने उत्तर बस्तर के केशकाल इलाके में छापामारों के हाथों में अपनी जान गंवाई। बाद में संजीव शुक्ल के बारे में जांच करने से पता चला कि वह पुलिस का जासूस नहीं था। हमें प्राप्त हुई प्राथमिक सूचना के मुताबिक वह एक विफल प्रेमी था जो अपने प्रांत में घोरतम अन्याय का शिकार होकर, मौजूदा लुटेरे समाज से असंतुष्ट एक आम आदमी था। निर्दोष भी था। ऐसे व्यक्ति का हमारे हाथों जान गंवाना बड़े अफसोस की बात है। उनके परिजनों तथा दोस्तों-रिश्तेदारों से हम तहेदिल से आग्रह कर रहे हैं कि उन्हें

(शेष पृष्ठ 44 में ...)

बैलाडीला खदान : आदिवासियों के अस्तित्व पर ही सवालियां निशान

शासकों के 'विकास' की असलियत

मध्यप्रदेश का बस्तर प्रान्त आपार प्राकृतिक संसाधनों से भरा है। यहां अन्य खनिजों के अलावा लोहा भी विस्तार से मिलता है। लेकिन, बैलाडीला क्षेत्र की खदानों का इतिहास हमारे सामने यह तथ्य रखता है कि यह अपार संपदा यहां के लोगों के लिए वरदान नहीं, बल्कि एक श्राप साबित हो रही है। बैलाडीला क्षेत्र के अपार लौह भण्डारों और यहां बेहद सस्ते में उपलब्ध श्रमशक्ति से सहज ही लुटेरों की नजर जाती है। इसलिए जापानी साम्राज्यवादियों की गिद्ध-नजर इस क्षेत्र पर पड़ी। चूंकि उन्हें साम्राज्यवादियों की सेवा में हमेशा लगे रहने वाले भारतीय शासक वर्गों का सहयोग हमेशा ही रहा है, इसलिए उन्होंने यहां की सम्पदाओं का दोहन करना शुरु कर दिया। उनके भारतीय सेवकों ने तत्काल ही देश की जनता के, खासतौर पर बस्तर के आदिवासी लोगों के विकास के लिए पक्का रास्ता डालने के लिए ही यहां लोहे का उत्खनन शुरु करने का ढिंढ़ोरा पीटते हुए काम चालू कर दिया। 1965 में केन्द्र सरकार ने एनएमडीसी (राष्ट्रीय खनिज विकास निगम) को जोकि एक सार्वाजनिक संस्था है, खनिज की सफाई करके जापान पहुंचाने की जिम्मेदारी सौंप दी। बस इस हुक्म के साथ ही खानों के उत्खनन के लिए सैकड़ों आदिवासी गांवों को उजाड़ दिया गया। इस 'विकास' ने देश की जनता की पहली 'भलाई' यह की कि जो आदिवासी हजारों सालों से उस इलाके में रह रहे थे उन्हें अपने घरों व गांवों से बेदखल कर दिया । हालांकि सरकार ने मुआवजा देने की घोषणा जरूर की, पर उसमें शर्त यह रखी कि जिनके पास पट्टे होंगे उन्हीं को मिलेगा। शासक इस बात को अच्छी तरह जानते थे कि सदियों से जंगल को काटकर काश्त करने वाले आदिवासियों को किसी भी सरकार ने पट्टे देने का कष्ट नहीं किया। इसीलिए जनता को अंगूठा दिखाने के लिए यह अच्छा बहाना बन गया। फलस्वरुप, स्थानीय जनता अपनी ही धरती पर पराई बन गई और कंपनी के बाबुओं के रहमोकरम पर टिके मजदूरों में तब्दील हो गई। जनता के साथ इतनी बर्बरता बरतने वाले शासकों ने, दूसरी ओर, तुरत-फुरत बैलाडीला से विशाखापट्टनम तक रेल लाईन बिछा दी ताकि यहां के परिष्कृत खनिज को औने-पौने दाम पर जापान पहुंचाया जा सके। तथाकथित आजादी के बाद कई दशक गुजर चुके हैं, पर शासकों ने ऐसे मार्गों में एक किलोमीटर की रेल लाईन नहीं बनाई जोकि लोगों के लिए उपयोगी हो। घने जंगलों, ऊंची व सीधी पहाड़ियों से भरे बेहद संकरे रास्ते में हजारों करोड़ों के जन धन का दुरुपयोग करते हुए यह रेल लाईन बिछा दी गई। इस रेल लाईन से देशवासियों को रत्ती भर फायदा भी नहीं है। इस रेल मार्ग से लोहा के अलावा दूसरी कोई चीज नहीं ले जाई जाती। जंगलों और पहाड़ों में यहां-वहां बिखरी हुई छोटी-छोटी बस्तियों की जनता को इस रेल लाईन की कोई जरुरत नहीं है। बैलाडीला में खनिज भण्डार खत्म होने से इस रेल लाईन को बन्द करने के अलावा कोई चारा नहीं रह जाएगा। इसके अलावा, हमारे शासकों ने पूरे एशिया में ही सबसे बड़ा कन्वेयर बेल्ट बनाया ताकि माल विशाखापट्टनम पहुंचते ही बिना एक पल भी गंवाए जहाजों में लादा जा सके। इस तरह, हजारों करोड़ों के जन धन खर्च करके बैलाडीला में शुरू किए गए उत्खनन काम ने लोगों को 'विकास' का जो पहला फल दिया वह यह है कि उन्हें अपनी भूमि से खदेड़ दिया गया। साफ हवा, पानी आदि से सुशोभित यह इलाका, अब देश में पर्यावरण के मामले में सबसे ज्यादा प्रदूषण फैलाने वाले इलाकों में से एक बन गया। इसके परिणामस्वरुप, यहां की जनता के अलावा, पशु-पक्षी सहित सभी प्राणियों के अस्तित्व पर ही सवालिया निशान लग गया। खदान काम के लिए यहां बसाए गए टाउनशिप भोलभाले आदिवासी लोगों मे सामंतवादी-साम्राज्यवादी संस्कृति फैलाते हुए, उनकी परम्पराओं, भाषाओं और संस्कृति को बुरी तरह ध्वस्त करते हुए उनके पारिवारिक जीवन को तबाह कर रहे हैं। जहरीली पूंजीवादी संस्कृति के प्रभाव में आकर जहां युवक अवारा और लम्पट बन रहे हैं, वहीं कई युवतियां वेश्या वन रही हैं। आदिवासी लोगों की जीवन-पद्धति पर और पर्यावरण पर साम्राज्यवादियों और भारत के दलाल शासकों द्वारा किए जा रहे हमले के चलते यहां उभरने वाली तस्वीर पर सरसरी नजर डाली जाए।

एनएमडीसी ने जापान की मदद से 1965 में यहां काम शुरू करके, पहले 14 नम्बर की खुली खदान, दो खानों का उत्खनन शुरू कर दिया। इसके फलस्वरूप, 5 नंबर की खदान के निकट बचेली टाउनशिप और 14 नम्बर की खदान के निकट किरन्दुल टाउनशिप स्थापित किए गए। 11-सी खदान में खुदाई काम 1980 के दशक में ही शुरू हुआ। इतने करोड़ों की लागत से चल रही इन खदानों में कुल नियमित मजदूर 3,250 होंगे, जबकि कैजुअल मजदूरों की संख्या करीब एक हजार होगी। इन खदानों से यही रोजगार मिला है। इनमें से अधिकतर लोग बाहर के ही हैं, स्थानीय आदिवासियों को कंगाली के सिवाए कुछ नहीं मिली। 'प्रभात ' के पिछले अंक (अक्टूवर 1999) में यह बताया जा चुका है कि किरन्दुल-विशाखपट्टनम रेल लाईन ने लोगों को क्या दिया। बैलाडीला से विशाखपट्टनम तक पानी के दबाव से जमीन से बिछाई पाइपों के माध्यम से लौह-चूर्ण पहुंचाने के लिए $4^1/_2$ साल पहले ही जमीनी सर्वेक्षण किया जा चुका है। हाल ही, जून 2000

में इसका काम भी शुरू हो गया। शुरू में ही कोई बाधा नहीं आए, इसके लिए यह काम आन्ध्र से शुरू कर दिया गया। साम्राज्यवादियों का पालतू कुत्ता चंद्रबाबू नाइडू ने इस काम का उद्घाटन किया। आन्ध्र-उड़ीसा-मध्यप्रदेश में यह काम होना प्रस्तावित है। मध्यप्रदेश के कोंटा इलाके के 10 गांवों के 106 किसानों को अपनी जमीनों से हाथ धोने पड़ेंगे। बस्तर के बैलाडीला तक 100 एकड़ जमीनों में न सिर्फ किसानों की फसलें चौपट हो जाएंगी, बल्कि पाइप लाइन के निर्माण से पानी की किल्लत और पर्यावरणीय प्रदूषण जैसे दुष्परिणाम होने वाले हैं। यह काम प्रमुख बहुराष्ट्रीय कम्पनी 'एस्सार' करवाने जा रही है। लेकिन यह बात तय है कि जनता अपनी जिंदगियों से खिलवाड़ करने वाले इस पाइप लाइन को जरूर ध्वस्त करेगी। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के हाथों बिके जा चुके बस्तर के नेता और शासकों की साजिशों को मात देकर, पाइप लाइन निर्माण पर रोक लगाएगी।

'विकास' के नाम पर सदियों से स्वतन्त्र जीवन जीने वाले आदिवासियों को गुलाम बनाकर उनकी जिन्दगियों, परम्पराओं और संस्कृति के साथ खिलावाड़

सरकार ने कई गांवों को या तो पूरी तरह उजाड़ दिया या फिर आंशिक तौर पर खाली करवा दिया ताकि बैलाडीला खदानों,रेल लाईनों, एनएमडीसी के दफ्तरों, मकानों, पुलिस थानों आदि के लिए एवं टाउनशिपों (बचेली और किरन्दुल) के निर्माण के लिए जगह उपलब्ध हो सके। उन गांवों में सदियों से बसे हुए आदिवासी किसानों की जमीनों को छीन लिया। उन्हें इस बहाने मुआवजा भी नहीं दिया कि उनके पास पट्टे नहीं हैं। खदानों और रेल लाईनों के बदौलत स्थानीय लोगों को रोजगार के अवसर मिलेंगे और उनकी जिन्दगी स्वर्ग बन जाएगी कहकर प्रचार करके उनकी सारी जमीनें छीन लेने वाली सरकार ने रोजगार उपलब्ध करवाने के मामले में उनके मुंह में मिट्टी डाल दी। यहां के कुल मजदूरों में आदिवासियों की तादाद 3% से भी कम ही होगी। सरकार की 'कृपा' से जिन आदिवासियों को अपने गांवों से, खेतीबाड़ी से जिस पर उनकी सदियों से जीविका चलती रही थी, खदेड़ दिया गया। उनके परिवारों का आर्थिक जीवन एकदम उलट गया। खेतीबाड़ी और वनोपजों के संग्रहण पर निर्भर करते हुए, बाजार के साथ कोई गहरा सम्बन्ध नहीं रखते हुए आजाद जिन्दगी जीते आए आदिवासी परिवार इस एक कदम से पराधीन बन गए। उनकी इतनी बदहाली हुई है कि जिस दिन का उस दिन टाउनशिपों में जाकर किसी मजदूरी काम हासील नहीं करते हैं या वनोपजों को इकठ्ठा करके पानी के मोल ही सही नहीं बेचते हैं, तो घर में चूल्हा नहीं जलेगा। बैलाडीला के आसपास स्थित 200-300 गांवों की जनता की जिन्दगियां इस 'विकास' के 'बदौलत' नित नई मुसीबतों में झोंकी जा रही हैं। इन गांवों के सभी उम्र के बच्चे, बूढ़े, महिलाएं - सभी लोग दिन उगते ही इकट्ठे किए गए वनोपजों को सिर पर टोकरों में लादकर टाउन शिपों की ओर रुख करते हैं। उन्हें औने-पौने दामों में बेचकर, जो भी पैसे मिले उनसे पेज-पसिए से पेट भर लेते हैं। सुबह-शाम मजदूरी काम के लिए बेताबी से कोशिश करते हुए, मिले तो खाते हैं, वरना भूखे रह जाते हैं। आदिवासी महिलाएं खदान के अधिकारियों, पुलिस अधिकारियों और दूसरे बाबुओं व साहूकारों के घरों में नौकरानी बनकर अपना पेट पाल रही हैं। कुछ लोग गांवों में शराब की भट्टीयां खोलकर महुए की शराब बनाकर आदिवासी युवतियों द्वारा टाउनशिपों में बेचवा रहे हैं। इसी सिलसिले में कई युवतियां बाबुओं के हाथों में अत्याचार की शिकार बन रही हैं। टाउनशिपों के साथ रोजमर्रा के सम्बन्ध ने उनकी संस्कृति और परम्पराओं में काफी बदलाव लाया। सफेदपोशी लोगों के बीच कदम रखने वाले आदिवासी युवती-युवकों को लुभा देने वाली शहरी संस्कृति अपने मोहक मायाजाल में फांसकर भ्रष्ट बना रही है। खास तौर पर जवान महिलाएं कथित सभ्य लोगों की मीठी बातों पर यकीन करके, उनके रंग-ढंग से आकर्षित होकर, उनके द्वारा धोखाधड़ी की शिकार बन रही हैं। उस दुष्ट संस्कृति के मकड़जाल में फंसकर छटापटाते हुए वेश्याओं में तब्दील हो रही हैं, नौजवान युवक आवारा और लम्पट बन रहे हैं।

इसका नतीजा यह रहा कि उनके परिवार तितर-बितर हो रहे हैं। उनकी संस्कृति और परम्पराएं लुप्त हो रही हैं। दिन भर के तनतोड़ मेहनत को भुलाने के लिए रात के अंधेरे में गांव के चौपालों में आग के गिर्द, अपने मेहनती जीवन के सौंदर्य का वर्णन करते हुए गाए जाने वाले सदियों पुराने *'निम्मा वयो निम्मा'* गीत लुप्त होने के कगार पर हैं, जबकि केबुल टीवी द्वारा फैलाई जा रही सामंती और साम्राज्यवादी संस्कृति के फूहड़ गाने इनकी जगह के रहे हैं। यह एक कडवी सचाई है कि अकेले टिलो गांव में ही, जोकि बैलाडीला से 6 कि.मी दूर स्थित है और जहां कुल मिलाकर 100 परिवार होंगे, इस जहरीली संस्कृति के असर से कोई 15 महिलाएं अनब्याही मांएं बन गईं। शहरी बाबुओं जैसे कपड़े पहने हुए, मेहनत से दूर होकर आवारागर्दी को अपनाए हुए युवक जो हर गांव में दिखाई पड़ेंगे, इस बात की जीती जागती मिसालें हैं कि इस जहरीली संस्कृति ने आदिवासियों की जिन्दगियों को किस हद तक बिगाड़ दिया। हजारों करोड़ों रुपए खर्च करके हमारे शासकों ने यही 'विकास' तो हासिल किया।

पर्यावरणीय प्रदूषण जो मनुष्यों सहित तमाम प्रणियों के अस्तित्व के लिए खतरा बना

बैलाडीला खदानों द्वारा लाया गया 'विकास' यहीं खत्म नहीं हुआ। उसने अपने साथ ऐसा पर्यावरणीय प्रदूषण ले आया जिससे यहां के मनुष्यों सहित तमाम प्राणियों का अस्तित्व कुछ ही समय में मिट सकता है।

बैलाडीला की खदानों में पहाड़ों में सेंध लगाकर बारूद से विस्फोट किया जाता है। इस विस्फोट से खनिज के पत्थर टुकड़े-टुकड़े होकर चारों तरफ गिर जाते हैं और हवा में भारी धूल उड़ती है। इस तरह बिखरे पड़े टुकड़ों को इकट्ठा करके प्रोक्लेनर मशीनों के जरिए डम्परों मे भरकर उन्हें पीसने वाली क्रशिंग मशीनों से पिसाया जाता है, और वहां से रेल वैगनों के जरिए विशाखपट्टनम पहुंचाया जाता है।

लेकिन इस सिलसिले में बिखरने वाले खनिजों के टुकड़ों और उड़ने वाली धूल वहां आसपास के अलावागांव, करका, दुग्गोली, परालनार आदि गांवों पर गिर जाती है। इसके अलावा इस खनिज को वहां से बहने वाली नदियों और नालों में परिष्कृत किया जाता है। इसके परिणामस्वरुप इन पहाड़ों के पश्चिम ओर स्थित ताल्पेरु व मीनागच्चवा नदियां, दक्षिण की तरफ स्थित मलिहेर नदी और पूर्व में स्थित शंखनी नदियों का पानी बुरी तरह प्रदूषित होकर केसरिया रंग का हो गया। ये इतने खतरनाक ढंग से प्रदूषित हो गए कि खुद पर्यावरण संरक्षण संस्था ने ही इन्हें 'डी' श्रेणी में रखा जिसका मतलब है कि नदियों का पानी पीने लायक नहीं है।

खनिजों की धुलाई से पानी में मिल रहे जहरीले रसायन और लाल मिट्टी पानी को जहरीला बना रहे हैं। शंखनी नदी के मामले में यह बहुत ही सच है। यह नदी यहां से 40 कि.मी. बहकर दन्तेवाड़ा के पास डंकनी में मिल जाती है। इसका पूरा पानी प्रदूषित हो गया। इस नदी के तट पर बसे लगभग 100 गांवों की जनता इसी नदी में झरने खोदकर पीने का पानी ले लिया करती है। इससे लोगों को नई-नई बीमारियों का शिकार होना पड़ रहा है। पहले ही मलेरिया आदि महामारियों से परेशान लोगों को यह 'दुबले पर दो आषाढ़' साबित हो रहा है। नई बीमारियों के फैलने से मौतों की संख्या भी काफी बढ़ गई। यहां तक कि यहां का पानी पीने वाले गाय-बैल, भेड़-बकरी आदि बेजुबान जानवर भी मौत के मुंह में समाते जा रहे हैं। इससे एक और खतरा यह है कि नदी-नालों में मछलियां भी मर चुकी हैं जिससे आदिवासियों को सीमित मात्रा में ही सही, अभी तक मिलते रहे पौष्टिक आहार से वंचित होना पड़ रहा है।

और पश्चिम की ओर बहने वाली ताल्पेरु, मीनागच्चाल और दक्षिण की ओर बहने वाली मलिंगेर नदी प्रदूषण की समस्या के अलावा एक और समस्या का भी सामना कर रही हैं।

खदानों में विस्फोटों से खनिज को चूर-चूर कर देने से वहां मिट्टी की बड़े पैमाने पर जमावट होती है जोकि बरसात आते ही नीचे की ओर बहकर नदियों और नालों को मिल रही है। इससे इन नदियों में लाल मिट्टी जमती जा रही है और नदियों के तटों पर 20 कि.मी. दूर तक लाल कीचड़ जमा हो रही है जोकि खतरनाक दलदल बन रही है। वहां पानी पीने के लिए जाने वाले मवेशी और भेड़-बकरे आदि पशु दलदल में फंसकर जान गंवा रहे हैं। इस प्रदूषण को तत्काल ही रोकने की मांग करते हुए आसपास के 40 गांवों की जनता ने एकजुट होकर एनएमडीसी के अधिकारियों से आग्रह किया, पर उनका दुखड़ा सुनने को कोई तैयार नहीं था।

इस तरह जनता के जीवन से और पर्यावरण से खिलवाड़ करते हुए की जा रही इन खदानों की खुदाई से देशवासियों को कोई फायदा नहीं हो रहा है, यह बात खुद सरकार के आंकड़े ही बताते हैं। जहां एक ओर एनएमडीसी देश के इस अनमोल खनिज सम्पदा को जापानी साम्राज्यवादियों को पानी के माल बेचकर उन्हें हजारों करोड़ों धन कमाने में मदद कर रही है, वहीं दूसरी ओर, इस खुदाई से वह खुद मात्र 98 करोड़ का शुद्ध मुनाफा कमा रही है। जल्दी ही यहां एक ऐसी योजना लागू होने वाली है जिसके तहत इस धन को भी सरकारी खजाने में पहुंचाने के बजाए भारत के दलालों की जेबों में पहंचाने के इरादे से यहां के कामों का निजीकरण किया होने वाला है।

आद्योगीकरण यहां के आदिवासियों की जिन्दगी में खुशहाली लाएगा, इस पूरे क्षेत्र के लिए 'विकास ' के द्वार खोल देगा, इस इलाके के लोगों को रोजगार और व्यापार के ढेर सारे अवसर मिल जाएंगे वगैरह-वगैरह लुभावने नारों की आड़ में भारत के दलाल शसक अनमोल सम्पदा (बैलाडीला का लौह खनिज) जापानी साम्राज्यवादियों को सस्ते दाम पर सौंप रहे हैं। इस सिलसिले में वहां की जनता के अस्तित्व पर ही सवलिया निशान लगा रहे हैं। जनता को उन्होंने घर-आंगन और जमीन-बाड़ी से तो पहले ही वंचित कर दिया, और अब यहां तक कि उनके पीने के पानी और हवा को भी जहरीला बना रहे हैं। उनकी संस्कृति और परम्पराओं को कुचल रहे हैं।

दण्डकारण्य का क्रान्तिकारी आन्दोलन इस मामले में अपना प्रयास जारी रखा हुआ है। नई खदानों को और रेल लाईनों के विस्तार का विरोध करते हुए एक ओर इस अनमोल सम्पदा की लूट को रोकने की कोशिश की जा रही है। दूसरी ओर, क्रान्तिकारी आन्दोलन ने इस सवाल पर भारत के दलालों और साम्राज्यवादियों की साजिशों के बारे में बताते हुए लोगों को शिक्षित करके मजबूत संघर्षों में उतारने की कोशिशें तेज कर दीं। साथ ही, पर्यावरणीय प्रदूषण के चलते बीमारियों से पीड़ित हो रहे लोगों को तत्काल राहत और उपचार पहुंचाने के लिए इलाज-केन्द्र खोलकर जनता को राहत पहुंचाई जा रही है। इन समस्याओं का स्थाई समाधान तब तक नहीं होगा जब तक कि दीर्घकालीन संघर्ष के जरिए साम्राज्यवादियों और उनके भारतीय दलालों के बन्धनों से इस अनमोल सम्पदा को मुक्त करके असली 'विकास' लाने के लिए उसका इस्तेमाल कर सकने वाली व्यवस्था लाने के लिए लड़ाई नहीं की जाती। जनता को इसी राजनीतिक समझ से अवगत करके संघर्षों में उतारने की प्रक्रिया अब शुरू हो गई। ❖

(.... अंतिम पृष्ठ का शेष)

का जवाब उन नेताओं को ही देना होगा जो रोजगार के अवसरों को लेकर चिल्ला रहे हैं। उन्हें यह भी बताना होगा कि बस्तर में ऐसे कितने हाइ-टेक तकनीशियन हैं जो इस संयंत्र में काम कर सकेंगे। सबसे पहले उन्हें जनता को यह स्पष्ट करना होगा कि आजादी के 50 वर्ष पूरे होने के बाद भी क्यों कर बस्तर मे साक्षरता दर 20 फीसदी से ज्यादा नहीं बढ़ी है। अपनी बकवास को बंद करके उन्हें बताना होगा कि इसके लिए कौन जिम्मेदार हैं। अभी तक चुनाव के मौकों पर मीठी-मीठी बातों से जनता को लुभाकर अपना उल्लू सीधा करते रहे इन धोखेबाज नेताओं को अब समझना चाहिए कि अब वक्त बदल गया है।

असीम मानव संपदा के धनी हमारे भारत में श्रमशक्ति की कोई कमी नहीं है। इस पर आधारित उद्योगों की स्थापना करके बेरोजगार युवाओं को रोजगार उपलब्ध करवाने की कई संभावनाएं हैं। लेकिन लुटेरे शासक वर्ग इसके लिए तैयार नहीं हैं। आधुनिकतम तकनीकी और कम्प्यूटरीकरण के जरिए मानव श्रमशक्ति का विनाश करते हुए बोरोजगारों की सेना को अंधाधुंध बढ़ा रहे हैं, ताकि दिनोंदिन गिरती अपने मुनाफों की दर को टिकाए रखा जा सके। अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा संस्थानों के आदेश पर भारतीय शासक वर्गो द्वारा अपनाई गई भूमण्डलीकरण, उदारीकरण, निजीकरण जैसी आर्थिक नीतियों के परिणामस्वरुप देश में सैकड़ों उद्योगों में ताले लग रहै हैं और हजारों मजदूर नौकरियों से हाथ धोकर सड़कों पर फेंके जा रहे हैं। ऐसे माहौल में यह कहना कि रोमेल्ट इस्पात संयंत्र के निर्माण से बस्तर में बेरोजगारी की समस्या का समाधान हो जाएगा और हर काबिल व्यक्ति को रोजगार मिलेगा, देश की वर्तमान वास्तविक स्थिति के बारे में जनता को भ्रम में रखना ही होगा।

रोमेल्ट इस्पात संयंत्र बस्तर का विकास नहीं, विनाश कर देगा

संसदीय राजनीति के नेता रोमेल्ट स्टील प्लान्ट का विरोध करने वालों पर विकास विरोधी का ठप्पा लगा रहे हैं । लेकिन कोई भी नेता इसका ब्यौरा नहीं दे रहा है कि वाकई यह इस्पात संयंत्र किस तरह बस्तर और बस्तर की जनता का विकास करेगा। सच तो यह है कि इस संयंत्र के खोले जाने से उत्पन्न होने वाली समस्याओं के चलते बस्तर और बस्तरियों को नुकसान होना तय है।

इस संयंत्र के निर्माण से इसमें उत्पन्न होने वाली सल्फर-डाई ऑक्साइड और कॉर्बन-मोनो-ऑक्साइड जैसी गैसों से जनता का स्वास्थ्य बिगड़ जाएगा। राज्य के मुख्य सड़क पर इसके प्रस्तावित निर्माण से यात्रियों को भी यह समस्या झेलनी पड़ेगी। हीरानार के इर्दगिर्द 10 किलोमीटर के दायरे में स्थित गोटापाल, बड़े तूमनार, नागुल, चिंदनार,ऊपेट,चिंदपाल सहित 40 गावों की जनता को इन गैसों के चपेट में आकर अस्वस्थ होने का खतरा है। जनता की भलाई का रत्ती भर ध्यान नहीं रखने वाले लुटेरे शासक ऐसे खतरों पर कान तक नहीं देंगे, इसका जीती-जागती मिसाल हैं भोपाल के गैस पीड़ित। इस संयंत्र के निर्माण से जनता के सामने पेश आने वाली इन समस्याओं पर संयंत्र के समर्थक चुप हैं। उनकी नजर में बस्तर के विकास में मददगार मुद्दों में ऐसी खतरनाक समस्याएं सहज ही छुपा दी जाती हैं।

रोमेल्ट इस्पात संयंत्र के निर्माण के लिए 1000 एकड़ जमीन की जरूरत होगी। अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष,विश्व बैंक, एशिया विकास बैंक जैसी अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं के सामने झोली फैलाकर कर्जों की याचना कर रही केन्द्र और राज्य सरकारें जो भी हों, ऐसी कम्पनियों को मुंहमांगी जमीनें दे रही हैं। मध्यप्रदेश सरकार ने भी बस्तर के जंगल इस कंपनी के हवाले कर दिए। अब तक 450 एकड़ जंगली जमीन का सर्वेक्षण किया जा चुका है। पता चला है कि उसमें 8000 से ज्यादा कीमती पेड़ हैं। पुरे 1,000 एकड़ जमीन का सर्वेक्षण किया जाएगा, तो इस संयंत्र के चलते वन संपदा का भारी विनाश हो सकता है। पर्यावरण की परवाह नहीं करते हुए हरे-भरे जंगलों को संयंत्र के हवाले करके प्रदूषण बढ़ाए जाने की बात पर भी इस संयंत्र के समर्थक चुप हैं। बस्तर के विकास का ढिंढ़ोरा पीटने वालों को होने वाले नुकसान नजर नहीं आ रहे हैं।

जहां स्थानीय किसान इस संयंत्र के निर्माण से खेत-जमीनें छिन जाने को लेकर प्रतिरोध खड़ा कर रहे हैं, वहीं ये नेता गली-संघर्ष करने की बात कह रहे हैं। जनता की संपदा को लूटने वाले साम्राज्यवादियों को मार भगाने के लिए गली-संघर्ष करने में अक्षम इन नेताओं को यह बताना होगा कि उनका संघर्ष किनके खिलाफ होगा। दरअसल वह दिन बहुत दूर नहीं है जब जनता खुद ही सभी प्रकार की लुटेरी ताकतों और उनके समर्थकों को मार भगा दे।

रोमेल्ट इस्पात संयंत्र के निर्माण होने से उसे 10 क्यूसेक (1000 घन मीटर प्रति घण्टा) पानी की जरूरत होगी। इसमें कोई संदेह नहीं कि पास की इंद्रावती नदी से पानी लिया जाएगा। इस संयंत्र की मशीनों को (ठण्डा बनाने, धूल आदि साफ करने और स्लेग क्रेंचिंग के लिए),दमकल मशीनों, पिग आइरन को ठण्डा बनाने आदि जरुरतों के लिए पानी की जरूरत होती है। पहले से ही पानी के संकट से जूझ रही इंद्रावती नदी इस संयंत्र की जरूरत को पूरा करते - करते और भी संकट में फंस जाएगी। इसके अलावा, संयंत्र सें निकलने वाला दूषित पानी भी इसी नदी में मिल जाएगा। इसके कारण नदी के नीचे 140 कि.मी. दूर तक, यानी भूपालपट्टनम तक कई गांवों की जनता इस दूषित पानी से प्रभावित होगी। संयंत्र के समर्थक इस समस्या पर भी चुप हैं। दरअसल इस संयंत्र की पानी की जरूरत को पूरा करने के और भी रास्ते हैं। बैलाडीला संयंत्र 5 व 6 से निकलने वाले पानी को पाईप लाइन के जरिए इस संयंत्र तक पहुंचाकर इस समस्या को टाला जा सकता है। लेकिन पाइप लाइन के निर्माण पर होने वाले अतिरिक्त खर्च उठाने के लिए भला कौन- सी कम्पनी तैयार होगी? इन कम्पनियों के मुनाफों में सेंध मारने वाला यह सुझाव कौन सा चुनावी नेता मान सकता है?

पहले ही, जिले में स्थापित बैलाडीला संयंत्र के चलते पहाड़ों से नीचे की तरफ बहने वाली कई नदियां दूषित हो चुकी हैं

जिससे उस इलाके के आदिवासियों को कई स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। और रोमेल्ट इस्पात संयंत्र बनने जा रहा हैं। वे कहते हैं कि इस संयंत्र के लिये शंखनी और डंखनी नदियों में आ मिलने वाले अवशिष्ट को बतौर कच्चेमाल इस्तेमाल किया जा सकता है और इससे बैलाडीला के कारण उन नदियों के दूषित होने का खतरा टल जाएगा। यह भी साफ धोखेबाजी है। जिस अवशिष्ट को इस प्रस्तावित संयंत्र में बतौर कच्चामाल इस्तेमाल किया जाना है उसमें लौह-अयस्क का 40-50 प्रतिशत तक होना जरुरी है। लेकिन, डंखनी और शंखनी नदियों के अवशिष्ट में लौह-अयस्क 20 से 28 प्रतिशत तक ही होगा। ऐसे में, कैसे यह बतौर कच्चामाल इस्तेमाल होगा, यह वे समर्थक ही जाने! जनता को गुमराह करने के लिए ही ऐसे बेसिर-पैर के तर्क दिए जा रहे हैं।

इंद्रावती नदी के दूषित होने से वन्यप्राणियों का अस्तित्व भी खतरे में पड़ सकता है। दंतेवाड़ा जिले के इंद्रावती राष्ट्रीय उद्यान, भैरमगढ़ वन्यप्राणी अभयारण्य, पामेड अभयारण्य, कुटरू अभयारण्य आदि इसी संवेदनशील इलाके में मौजूद हैं। देश के दुर्लभ वन्यप्राणियों के लिए ये केन्द्र जाने जाते हैं। समुचित सुरक्षा उपायों के बिना ही किए गए औद्योगीकरण से इनकी दुर्गति होने वाली है। साथ ही, बेशकीमती वन संपदा को इस प्रदूषण से नुकसान होने वाला है। साथ ही, ऐसी पर्यावरणीय समस्याओं को मद्देनजर रखकर ही स्थानीय जनता ने कुछ वर्ष पहले बोधघाट पन-बिजली परियोजना और तुमनार में प्रास्तावित कागज मिल के निर्माण का विरोध करके उन फैसलों को वापस लेने तक संघर्ष जारी रखा। जनता को अपने इस अनुभव के सहारे रोमेल्ट इस्पात संयंत्र के समर्थकों को भी सबक सिखा देना चाहिए।

इस संयंत्र के निर्माण से तरह-तरह के दुष्परिणाम होने वाले हैं। संसदीय राजनीतिक पार्टियों के नेता सिर्फ नौकरियां मिलने और बेरोजगारी की समस्या का समाधान होने की बात कहकर जान बूझकर तथ्यों पर परदा डाल रहे हैं ताकि जनता को गुमराह किया जा सके। बेरोजगारी की समस्या की गंभीरता से वाकिफ ये नेता युवाओं को इस संवेदनशील मुद्दे पर भड़का रहे हैं। रोजगार के अवसर वाले उनके दावे में भी सचाई बिलकुल ही नहीं है। जनता को ही इन झूठे नेताओं को सबक सिखा देना चाहिए और उनकी प्रायोजक बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को मार भगा देना चाहिए।

अब तक बस्तर के नेताओं ने किसकी भलाई की? क्या हासिल किया?

बस्तर के बीचोंबीच स्थित बैलाडीला इलाका लोहे के पहाड़ों के लिए जाना जाता है। यहां समूचे एशिया में ही सुविख्यात लोहे की खदानें है। इन पहाड़ों के सीने को चीरकर जापानी साम्राज्यवादी लौह-खनिज को लूट रहै हैं। बैलाडीला की खदानों से केन्द्र सरकार 325 करोड़ की विदेशी मुद्रा कमाती है और राष्ट्रीय खनिज विकास निगम (एनएमडीसी) को 200 करोड़ का मुनाफा मिल जाता है। यहां से लौह खनिज को ले जाने के लिए दूरस्थ जंगल में स्थित बैलाडीला से विशाखापट्टनम की बंदरगाह तक रेल लाइन बिछाई गई। इससे उस इलाके की या बस्तर जिले की जनता का कितना विकास हुआ है, किरन्दुल, बांसी, गमावाड़ा और पटेलपारा के किसानों की जिंदगी को देखने से इसका पता चलेगा; और उन पहाड़ों के इर्दगिर्द मौजूद कई अन्य आदिवासी गांवों के किसानों की हालत से इसका पता चलेगा।

लौह खदानों की खुदाई से उस इलाके का परायीकरण हो गया। जंगल के कुकुरमुत्तों और दतौनों से लेकर हर किस्म की वन सम्पदा बाजार का माल बन गई और स्थानीय जनता को उससे वंचित होना पड़ रही है। पूंजीवादी जहरीली संस्कृति आदिवासी संस्कृति को निगलती जा रहा है। शाराब का व्यापार और मादक पदार्थों का उपभोग बढ़ गया। गरीब आदिवासी युवतियां वेश्यावृत्ति की ओर धकेल दी जा रही हैं। स्वाभिमान की नीलामी हो रही हैं। जहां मुनाफाखोर साम्राज्यवादी लोहे के इन पहाडों को निगलकर मुटाते जा रहे हैं, वहीं बस्तर की संपदा की खुली लूट खसोट हो रही है और बस्तरिए तबाही की ओर जा रहे हैं। इसे विकास का नाम देकर प्रशंसा करने वाला चाहे कोई भी हो, वह जनद्रोही हो होगा। आज बस्तर की जनता को इस तरह का विकास कतई नहीं चाहिए।

'बस्तर के विकास' के ठेकेदार यह भी कहते हैं कि रावघाट रेल लाईन के निर्माण से बस्तर का विकास हो जाएगा। बैलाडीला के अनुभव देखने वालों को इस बात पर यकीन ही नहीं होगा कि रावघाट रोल लाईन से बस्तर का विकास होगा। महत्वपूर्ण सवाल यह है कि क्या रावघाट रेल लाइन जनता की जरूरतों के मद्देनजर बनाई जा रही है? या वहां के अनमोल और असीम लौह खनिज का भिलाई इस्पात संयंत्र के लिए दोहन करने के इरादे से बनाई जा रही है? ये दोनों एक-दूसरे से पूरी तरह अलग हैं। एक ही म्यान में दो तलवारें नहीं रखी जा सकती। लेकिन, भिलाई इस्पात संयंत्र को कच्चामाल के अभाव से बचाना है तो जनता के विकास के नाम से लगातार प्रचार करने से ही इस रेल लाइन का निर्माण हो सकेगा, यह सचाई ध्यान में रखकर ही ये धोखेबाज नेता इस तरह के प्रचार पर उतारू हैं। विकास के नाम पर जनता को गुमराह करने की साजिश है यह। अपार संसाधनों से भरपूर बस्तर जिले की बड़े पूंजीपतियों के हितों में बलि चढ़ाने के षड़यंत्र को बस्तर की जनता को इजाजत नहीं देनी चाहिए।

बस्तर की जनता क्या चाह रही है?

नोबल पुरस्कार ग्रहीता अमर्त्य सेन द्वारा तैयार की गई मध्यप्रदेश मानव विकास रिपोर्ट (1998) के मुताबिक बस्तर जिले में जहां की 60-70 प्रतिशत आबादी आदिवासियों की है, पिछले 50 साल के शासन में महज 2 प्रतिशत जमीनों को सिंचाई की सुविधा उपलब्ध हो पाई है। 93.6 फीसदी घरों में शौचालय की सुविधा नहीं है। 75.7 फीसदी जनता बिजली की सुविधा से वंचित है। 49 प्रतिशत जनता सुरक्षित पेयजल से वंचित है। दूर-दराज के इलाकों के आदिवासियों में ये आंकड़े और भी ज्यादा होंगे। इन आंकड़ों के अलावा,मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री दिग्विजय सिंह के हालिया ग्रामसम्पर्क अभियान के दौरान सामने आए आंकड़ों से

बस्तर की जनता की तसवीर और भी स्पष्ट हो जाती है।

राज्य के 38 जिलों में 22,91,661 बच्चे स्कूल नहीं जा रहे हैं। आदिवासी जिलों के बच्चों की हालत और भी खस्ता है। इन जिलों में से बस्तर एक है। यहां के 60 से 90 प्रतिशत बालिकाएं पट्टी-पेंसिल के नसीब से वंचित हैं। इन 38 जिलों के 55,295 गांवों में से 11,430 गांव ऐसे हैं जहां शिक्षा की न्यूनतम सुविधाओं का भी अभाव है। ये आंकड़े वर्ष 2000 की दूसरी छमाही में मुख्यमंत्री के जन संपर्क अभियान के दौरान सामने आए हैं। 53 सालों के इस कथित स्वाधीन शासन के दौरान हासिल इस 'शानदार' विकास को ज्यादा गहराई से समझा जा सके, इसके लिए जनता के धन का दुरुपयोग करते हुए सरकार इन आंकड़ों को वेबसाईट में दर्ज कर रही है। उपरोक्त आंकड़ों से पता चल जाता है कि मुख्यमंत्री द्वारा जोरशोर से चलाए जा रही शिक्षा गारन्टी योजना ,'पढना-बढना' आन्दोलन आदि से कितनी प्रगति हासिल की जा रही है।

आज भी बस्तर की जनता को खेती-किसानी करने के लिए पर्याप्त जमीनें नहीं है। रही सही जमीनें भी सिंचाई के अभाव में प्रकृति के रहमोकरम पर ही पूरी तरह निर्भर हैं। जनता को आए साल सूखे की स्थित से जूझना पड़ रहा है। यहां के खेती करने के तरीके भी अत्यंत पुराने हैं। बस्तर की जनता के विकास के बारे में बोलने वाले इन नेताओं ने खेती के सुधार के कोई कदम नहीं उठाए। स्वास्थ की सुविधाओं के अभाव में बच्चे-बड़े तथा स्त्री - पुरुष कई परेशानियां झेल रहे हैं। छूत की बीमारियों और महामारियों के प्रकोप से असामयिक मौतें हो रही है। जच्चा और बच्चों की मौतें बड़े पैमाने पर हो रही हैं। शिक्षा की सूविधाएं भी यहां नाम के वास्ते ही हैं। ये हैं जनता की मूलभूत समस्याएं। इनके हल के लिए जो व्यक्ति तत्काल कोशिश करेगा वही बस्तर की जनता के वास्तविक विकास का समर्थक हो सकता है। इन क्षेत्रों में ऊपरी तौर पर उठाने वाले दिखावटी कदम नहीं, बल्कि आमूलचूल बदलाव की जरूरत है।

यह अलग से कहना न होगा कि बस्तर में अपार संसाधन हैं। इसके बावजूद बस्तरवासी भीषण गरीबी में डूबे हुए हैं। इनकी स्थिति का पूर्व मुख्यमंत्री और वर्तमान केन्द्रीय मंत्री सुन्दरलाल पटवा के शब्दों में ही बयान किया जाए, तो "सोने की ईटों पर बैठा बस्तर भूखा और नंगा रहने विवश है" इन तमाम संसाधनों को लूटने के लिए विभिन्न साम्राज्यवादी कंपनियां और उनके पिछलग्गू दलाल पूंजिपति मौके तलाश रहै हैं। इनके द्वारा किए जा रहे आद्योगीकरण से बस्तर का रत्ती भर विकास भी नहीं हो सकेगा, बल्कि उसका विनाश हो जाएगा। जनता को गुमराह करने के लिए ये नेता हमेशा तथ्यों को तोड़-मरोड़कर पेश करते हैं। इसलिए जनता को इनकी धोखेबाजी का पर्दाफाश करते हुए अपने विकास को खुद ही लड़कर हासिल करना चाहिए। पहले खेती-किसानी का विकास करना चाहिए। उस पर निर्भर करते हुए उसके लिए उपयोगी उद्योगों की स्थापना करनी चाहिए। दौ पैरों से चलने वाली आर्थिक नीतियों को अपनाना चाहिए। जनतंत्र के असली प्रेमी वही होंगे जो यह मानते हुए कि 'बस्तर की सम्पदाओं के मालिक बस्तरवासी ही हैं', उनका पक्ष लेते हुए उनकी इच्छा से और उनके सक्रिय सहयोग से बस्तर के विकास के समुचित उपाय अपनाने के पक्ष में हों। इसी समझ से पिछले 20 सालों से बस्तर में कई संघर्ष जारी हैं। इनका भाकपा (मा-ले) (पीपुल्सवार) नेतृत्व कर रही है। बस्तर के विकास को चाहने वालों को इन संघर्षों के प्रति समर्थन प्रकट करते हुए, संघर्षरत जनता के साथ एकताबद्ध होना होगा। आज बस्तर की जनता यही चाह रही है। इसके उलट, लुटेरी सरकारों से सांठगांठ करके, जन संघर्षों को कुचलने के लिए उन सरकारों द्वारा अपनाई जा रही जन विरोधी और दमनकारी कार्रवाइयों में भागीदार जो भी बनेगा उसे इसकी कीमत चुकानी पड़ेगी। सरकार आज बस्तर के विकास के नाम पर जो भी जन विरोधी कदम उठाए, क्रमवार बढ़ रहा बस्तर का जन संघर्ष उसका प्रतिरोध करेगा। बस्तर की भूमि में पैठ करके यहां के संसाधनों का दोहन करने वाली तमाम साम्राज्यवादी और दलाल पूंजीवादी कंपनियों पर दण्डकारण्य का क्रान्तिकारी आन्दोलन कब्जा कर लेगा।

हम मजदूर-किसानों तथा छात्र-बुद्धिजीवियों का आह्वान कर रहे हैं कि सामंतवाद-साम्राज्यवाद विरोधी संघर्षों को और भी तेज करें; नई आर्थिक नीतियों की आड़ में बहुराष्ट्रीय निगमों का हितपोषण करने वाली सरकार का पर्दाफाश करते हुए जनता के हितों की रक्षा करने के लिए दृढ़ता से लड़ें; हमारे देश को अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा संस्थाओं के पास गिरवी रख रही केन्द्र और राज्य सरकारों की तमाम नीतियों का एकजुटता से प्रतिरोध करें। ❖

(...पृष्ठ 34 का शेष)

पहलू विपरीत में अनिवार्यता से बदल लेता है। यहां हालात का होना जरूरी है। यदि कुछ हालात नहीं होंगे, तो विरुद्ध पहलुओं में से कोई भी पहलू अपने विपरीत पहलू में नहीं बदलेगा।" पार्टी के भीतर आंतरिक संघर्ष में एक बुरे विषय को अच्छे विषय में बदलने की प्रमुख शर्त सही कार्यदिशा के मार्गदर्शन में मजबूत संकल्प से किए जाने वाला संघर्ष ही है। इतिहास में ऐसा कोई भी पाखण्डी मार्क्सवादी नहीं रहा जिसने हमारे उद्देश्य पर चोट करने में सफलता पाई हो। उसके पहले ही, उन सभी को पराजय का मुंह देखना पड़ा। बुरे विषयों के अच्छे विषयों में बदले जाने के पीछे कारण यह सच्चाई है कि अध्यक्ष माओ ने हमें महानतम संघर्षों में उतारकर, आम प्रवृत्ति के अनुरूप विकास का मार्गदर्शन कर, क्रान्ति के अनुकूल रास्ते में अंतरविरोधों को परिवर्तित करने के लिए अनुकूल स्थिति पैदा करके, इससे तिरोगामी बदलावों पर समय पर रोक लगाकर उनसे उबरना संभव बनाया।

क्रान्ति के दौरान सभी किस्म की गलत कार्यदिशाएं और प्रभाव एवं कई किस्म के बुरे विद्रोह व बुरी बातें होती हैं। लेकिन दुनिया हमेशा आगे ही बढ़ती है। नया विषय निश्चित रूप से पुराने विषय की जगह लेता है। पुरोगामी पहलू निश्चित रूप से विनाशरत पहलू को पराजित करता है। सही विषय निस्चित रूप से बुरे विषय पर हावी हो जाता है। समाजवादी व्यवस्था अंतिम रूप से पूंजीवादी व्यवस्था की जगह लेगी। दुनिया की चारों ओर साम्यवाद स्थापित किया जाएगा। यही विकास का आम रुझान है। यह बिना रुके चलने वाला ऐतिहासिक रुझान है। ❖

प्रभात

भाकपा (मा-ले) (पीपुल्स वार) दण्डकारण्य
स्पेशल ज़ोनल कमेटी का मुख-पत्र

मई-जुलाई 2000

हीरानार इस्पात संयंत्र से बस्तर का विकास नहीं होगा

रोमेल्ट इस्पात संयंत्र के हित में बस्तर की बलि मत चढ़ाओ

दण्डकारण्य में मध्यप्रदेश के दक्षिण बस्तर डिवीजन के भैरमगढ़ दस्ता इलाके और माड़ जिवीजन के इंद्रावती दस्ता इलाके के निकट हीरानार गांव स्थित है। जगदलपुर से बीजापुर जाने वाली राज्य की मुख्य सड़क पर गीदम के निकट स्थित इस छोटे-से गांव में आदिवासियों के अलावा अन्य तबकों के लोग भी बसे हुए हैं। यह गांव की बसाहट इंद्रावती नदी के तट पर होना एक विशेषता है। लौह खनिज के लिए सुविख्यात बैलाडीला के पहाड़ों से घिरा होना इस गांव की एक और विशेषता हैं। इस गांव की विशिष्टताओं और विशेषताओं ने सहज ही साम्राज्यवादी गिद्धों को आकर्षित किया। रोमेल्ट स्टील प्लान्ट के निर्माण के लिए इस गांव का चुनाव किया गया। इस विदेशी बहुराष्ट्रीय कम्पनी की दुआ से हीरानार पिछले कुछ माह से बहस का बड़ा मुद्दा बन गया है। बस्तर में लुटेरे वर्गीय राजनीतिक पार्टियां हीरानार में रोमेल्ट स्टील प्लान्ट के निर्माण को अपना लक्ष्य घोषित करते हुए तरह-तरह के नारों से सामने आ रही हैं। उनका दावा है कि हीरानार (रोमेल्ट) इस्पात संयंत्र से बस्तर की जनता का चौमुखी विकास हो जाएगा। इस संयंत्र के निर्माण से नौकरियां मिलने के दावे भी किए जा रहे हैं। नेता इस दावे के साथ जनता को लुभा रहे हैं कि इससे बस्तर की बेरोजगार युवाओं की समस्या का समाधान हो जाएगा। सभी किस्म की चुनावी राजनीतिक पार्टीयों को अब हीरानार इकलौता मुद्दा बन गया और बस्तर के राजनीतिक पटल पर यही हावी हो गया है।

भाजपा के युवा संगठन भाजयुमो ने यह नारा उछाला है, 'हम एक है- हम सब एक है। न हम आदिवासी है न हम गैर आदिवासी। न हम भाजपाई हैं और न ही कांग्रेसी और कम्युनिस्ट। हम सब एक है।' बस्तर के चित्रकोट क्षेत्र की विधायक प्रतिभा शाह ने यह कहकर चुनौती ही दे डाली है: "हीरानार इस्पात संयंत्र के निर्माण के लिए हम सड़क से लेकर संसद तक आंदोलन खड़ा करेंगे। संयंत्र का विरोध करते हुए यदि ब्रह्मदेव शर्मा मोर्चा खोलेंगे, तो हम चुप नहीं रहेंगे। ब्रह्मदेव शर्मा को यह बात स्वीकारनी चाहिए कि बस्तरिए 20 साल पहले के लंगोटिए आदिवासी नहीं हैं। बस्तर में हर काबिल व्यक्ति को रोजगार चाहिए। अब भी यदि बी.डी.शर्मा बस्तर के विकास और संस्कृति के नाम पर जनता को उकसाएंगे, तो उसका खामियाजा भुगतने को उन्हें तैयार रहना होगा। बस्तर अंचल के 12 विधायक इस्पात संयंत्र के निर्माण के मुद्दे पर एकजुटता से खड़े हैं।" प्रतिभा ने बह्मदेव शर्मा पर 'बूढ़ी मानसिकता' के चलते सभी का विरोध करने का आरोप लगाते हुए अपनी नाराजगी जाहिर की। लेकिन इस सचाई पर चित्रकोट की इस महारानी ने चुप्पी साधी रखी है कि उनके 12 विधायकों को एकजुट करने वाली 'महाशक्ति' और कोई नहीं, बल्कि रोमेल्ट कम्पनी के मालिक है।

लोकसभा में बस्तर से प्रतिनिधित्व करने वाले भाजपा नेता बलिराम कश्यप ने घोषणा की,"बस्तर में निजी उद्योगों से पूंजीनिवेश का स्वागत करेंगे।"

एनएसयूआई के भूतपूर्व उपाध्यक्ष योगेश शुक्ला ने आह्वान किया, "हीरानार स्टील प्लान्ट के निर्माण के लिए सड़कों पर संघर्ष के लिए कमर कस ली जाए"। उसने इस संयंत्र को बस्तरियों की भावनाओं से जुड़ा हुआ बताया। इस संयंत्र के निर्माण से बस्तर के संपूर्ण विकास होने, बेरोजगारी समस्या के खत्म होने और नौजवानों को रोजगार मिल जाने की बातें भी कहीं उसने।

इस तरह, बस्तर की विभिन्न संसदीय पार्टीयां (कांग्रेस, भाजपा, भाकपा, माकपा आदि) रोमेल्ट इस्पात संयंत्र के निर्माण पर तुली हुई हैं। यह न तो कोई संयोग है न ही कोई अचरज की बात है। इन सभी पार्टियों का वर्गीय चरित्र ही यह है। बड़े जमींदारों, साम्राज्यवादियों और दलाल पूंजीपतियों की सेवा में जुटी ये पार्टियां इससे उलटा भी भला कैसे करेंगी? जो इन पार्टियों के रवैए का पर्दीफाश करते हुए, जनता के हित में रोमेल्ट इस्पात संयंत्र का विरोध कर रहे हैं, उनकी ये पार्टियां विकास के विरोधी कहकर निंदा कर रही हैं, ठीक वैसा ही जैसा कि 'उलटा चोर कोटवार को डाटा।' एक झूठ को बार-बार दोहराकर उसे सच साबित कर सकने के सिद्धांत पर यकीन करने वाली ये पार्टियां बस्तर की जनता को, खासतौर पर युवाओं को तथ्यों से गुमराह कर रही हैं।

नेताओं के वादे जो तथ्यों को निगल रहे हैं

रोमेल्ट इस्पात संयंत्र के तथ्यों और संसदीय राजनीतिक पार्टियों के नेताओं के वादों में आसमान-जमीन का फर्क है। विदेशी बहुराष्ट्रीय निगम का यह प्रस्तावित रोमेल्ट इस्पात संयंत्र पूरी तरह हाइटेक नीतियों पर आधारित है। यह भारी और आधुनिक मशीनों से चलने वाला है जिससे बहुत कम संख्या में नौकरियां मिलेंगी। अखबारों में यह चर्चा आम है कि इसमें सिर्फ 250 लोगों को ही रोजगार उपलब्ध होगा। बताया जा रहा है कि सुशिक्षित और कुशल मजदूरों और उन्नत श्रेणी के तकनीशियनों को ही इसमें अवसर मिलेंगे। बहुत सीमित संख्या में और हाइ-टेक तकनीशियनों को ही नौकरियां उपलब्ध करवाने वाली इस कम्पनी की स्थापना से बस्तर की बोरोजगारी का किस हद तक समाधान होगा? इस सवाल *(शेष पृष्ठ 49 पर...)*